॥ हरि:ॐ ॥

नामस्मरण

हरि:ॐ आश्रम प्रकाशन, सुरत

॥ हरि:ॐ ॥

नामस्मरण

पूज्य श्रीमोटा

संकलन :

डॉ. रमेश भट्ट (Ph. D.)

अनुवादक :

डॉ. कविता शर्मा 'जदली' (Ph. D.)

संपादक :

रजनीभाई बर्मावाला 'हरि:ॐ'

हरि:ॐ आश्रम प्रकाशन, सुरत

नामस्मरण ■ २

© हरिःॐ आश्रम, सुरत–३९५००५

☐ प्रकाशक : हरिःॐ आश्रम,
कुरुक्षेत्र, जहाँगीरपुरा, सुरत–३९५००५.
फोन : (०२६१) २७६५५६४, २७७१०४६
E-mail : hariommota1@gmail.com
Website : www.hariommota.org

☐ संस्करण : प्रथम प्रत–१०००

☐ मूल्य : ₹ 10/- (दस रुपये)

☐ प्राप्तिस्थान : (१) हरिःॐ आश्रम, सुरत–३९५००५.
(२) हरिःॐ आश्रम,
पो. बो. नं. ७४, नडियाद–३८७००१.
फोन : (०२६८) २५६७७९४

☐ अक्षरांकन : दुर्गा प्रिन्टरी,
अवनिकापार्क सोसायटी, खानपुर,
अहमदाबाद–३८०००१.
फोन : (०७९) २५५०२६२३

☐ मुद्रक : साहित्य मुद्रणालय प्रा. लि.
सिटी मिल कम्पाउन्ड,
कांकरीया रोड, अहमदाबाद–३८००२२.
फोन : (०७९) २५४६९१०१

॥ हरिःॐ ॥

• समर्पणांजलि •

मूल रामगंजमंडी गाँव, जिला कोटा, राजस्थान के निवासी, अनेक पूर्वजन्मो की अपूर्ण साधना परिपूर्ण करने की ईच्छावान साधक जीव, कोटा से वृंदावन और वृंदावन से सन् १९८८ इस्वी में नर्मदातट, मंगलेश्वर गाँव, जिला भरूच, गुजरात में निमित्त रूप से स्थायी निवास करनेवाले

साधक-जीव बाबा गोपालदास

को यह पुस्तक का प्रथम हिन्दी संस्करण अत्यंत प्रेम और आदरपूर्वक समर्पण।

आपने मंगलेश्वर में हमारे एक ट्रस्टी श्रीरजनीभाई के परिचय में आने के बाद पू. श्रीमोटा के साहित्य में से 'प्रभु की खोज' का वैज्ञानिक दृष्टिकोणका पूर्ण अभ्यास करने के हेतु प्रयासपूर्वक गुजराती भाषा का पूर्ण अध्ययन किया। हरिःॐ आश्रम, सुरत के मौनमंदिर में मौन साधना का अभ्यास करने के बाद अपने निवास में भी ईसी प्रकार की साधना अभ्यास में व्यस्त रहै। अंतः स्फुरणा से आपने पू. श्रीमोटा के गुजराती पुस्तकों का हिन्दी भाषा भावानुवाद करने की जिम्मेदारी अत्यंत परिश्रम से समयसर निभाई।

आपका यह अमूल्य योगदान अपने आप ही भावस्वरूप कार्य है। पू. श्रीमोटा के साहित्य में से नामस्मरण के विषय पर संकलित यह पुस्तिका मूल गुजराती एवम् अंग्रेजी में उपलब्ध है। अपने देश की आम जनता के अभ्यास के हेतु से यह पुस्तिका हिन्दी में प्रकाशन कर रहे हैं। हरिःॐ आश्रम, सुरत का ट्रस्टीमंडल आपश्री को यह पुस्तक का प्रथम संस्करण बड़े आदरपूर्वक समर्पित करते हुए आभार की अनुभूति व्यक्त करता है।

— ट्रस्टीमंडल

दि. : २५-७-२०१० — हरिःॐ आश्रम, सुरत

संवत २०६६, गुरुपूर्णिमा

॥ हरि:ॐ ॥

• निवेदन •

(प्रथम संस्करण)

प्रभुप्राप्ति के लिए सरल से सरल साधन प्रभु का नामस्मरण है। असंख्य संतो को केवल नामस्मरण से प्रभुप्राप्ति हुई है। वर्तमानकाल में हमारे श्रीसद्गुरु पू. श्रीमोटाने भी नामस्मरण की साधना द्वारा परमपद पाया। इन्होंने जिज्ञासुओं को नामस्मरण के विषय में विस्तृत मार्गदर्शन दिया है। हमारे वर्तमान ट्रस्टी श्री रजनीभाईने कुछ वर्ष पहले उसमें से कुछ अंश चुने थे। उसका योग्य संकलन कर के डॉ. रमेशभाई भट्ट ने 'नामस्मरण' नाम की एक छोटी सी पुस्तिका तैयार की थी, जिसे श्री यशवंतभाई पटेल, अहमदाबाद ने प्रकाशित की थी, जो बहुत लोकप्रिय हुई थी। इसका विस्तृत स्वरूप प्रकाशन करने की हमारे स्व. ट्रस्टीश्री झीणाकाका की इच्छा नामस्मरण के विषय में पू. श्रीमोटा का वैज्ञानिक निरूपण का नया संकलन डॉ. रमेशभाई भट्टने फरवरी १९९२ में कर के पूर्ण की। जिसके फलस्वरूप यह पुस्तक आप साधकों के करकमल में है।

इस पुस्तक का मुद्रण-कार्य चतुरंगी मुखपृष्ठ सहित श्री श्रेयसभाई पंड्या, मे. साहित्य मुद्रणालय, अहमदाबाद ने श्रीमोटा के प्रति अपने अत्यंत भक्तिभाव से किया है। वे हमारे निकटवर्ती स्वजन है, उनका आभार मानने के लिए हमारे पास शब्द नहीं है।

इस पुस्तका का मुद्रण, अनुवाद आदि कार्य बन सके उतनी सावधानी से किये गये हैं। फिर भी कोई क्षति मालूम पड़े तो कृपया हमें सूचित करें, जिससे आगे के संस्करण में सुधार हो सके।

इस पुस्तक के पठन से मार्गदर्शन पाकर जिज्ञासु साधकजन प्रभुप्राप्ति के पथ पर आगे बढ़े ऐसी प्रभुप्रार्थना है।

—ट्रस्टीमंडल
हरि:ॐ आश्रम, सुरत

दि. : २५-७-२०१०
संवत २०६६, गुरुपूर्णिमा

॥ हरिःॐ ॥

• अनुक्रम •

नामस्मरण का वैज्ञानिक निरूपण

१. नामस्मरणमहिमा
- नाममहिमा २०

२. नामस्मरण का प्रयोग
- नामजप का प्रारंभ २५
- स्मरण के सोपान २९
- चेतनात्मक नशा.................................... ३४

३. शब्द की शक्ति
- शब्द का मूल.. ३६
- सभी उपासनाओं में शब्द ३८
- शब्दशक्ति—वैज्ञानिक तथ्य........................ ४१

४. नामस्मरण : वैज्ञानिक अभिगम और पृथक्करण
- समर्पण के प्रयोग ४४
- प्रभु का स्मरण—व्याख्या और प्रक्रिया............ ४५
- जप की पद्धति ४९
- 'ॐ' विषयक ५२
- 'ॐ' का उच्चारण.................................. ५६
- नाम और नामी...................................... ५७

५. नामस्मरण का उद्देश्य
- साधन का उपयोग.................................. ६०
- स्मरण से सभानता ६१
- स्मरण के साथ प्रार्थना............................ ६२
- भावना का सातत्य.................................. ६३
- स्मरण के साथ...................................... ६३

- स्मरणसाधना ६५
- सतत प्रयास ६६
- अभ्यास से शुद्धि ६७
- स्मरण क्यों ? ६८
- ज्ञानभाव के साथ स्मरण ६८
- ज़ोर से स्मरण ७०
- मन और स्मरण ७०
- जपयज्ञ ७२

६. नामस्मरण साधना

- निराशा की स्थिति में ७४
- स्मरण का परिणाम ७५
- निर्बलता से मुक्ति ७७
- 'हरिः ॐ' की धुन ७७
- स्मरण में बाधाएँ ७८
- दुर्लभ नामस्मरण ७९
- स्मरण से सभानता ८०
- जप के साथ-साथ ८१
- भावुकता का उपयोग ८२
- जप के लिए प्रयत्न ८४
- स्मरण से प्रसन्नता ८५
- भावना दृढ़ करने के लिए स्मरण ८५
- स्मरण का अभ्यास ८६
- स्मरण और संसार ९१
- नामस्मरण का प्रताप ९७
- विस्मरण से सावधान ९८
- स्मरण के साथ-साथ ९९

॥ हरि:ॐ ॥

• नामस्मरण का वैज्ञानिक निरूपण •

(संपादकीय)

हमारे देश के विभिन्न धर्म सम्प्रदायों में भिन्न-भिन्न साधना पद्धतियाँ हैं। इनमें अधिकतर धर्मों ने नामस्मरण को अलग-अलग ढंग से स्वीकार किया है। जहाँ नामस्मरण नहीं हैं, वहाँ 'प्रभु' के नाम का उद्‍गार या उद्‍बोधन तो है ही। हमारे देश में हिन्दू धर्मसंस्कृति के महान ग्रंथ वेद से लेकर श्रीमद्‍भगवद्‍गीता तक सभी ग्रंथों में शब्द उपासना—जपसाधना आदि का स्पष्ट उल्लेख तथा महिमा भी बतलाई गई है। श्रीमद्‍भगवद्‍गीता में जपयज्ञ को श्रीभगवान की विभूति रूप में निरूपित किया गया है। हमारी संत परम्परा में प्रभुस्मरण ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इसप्रकार नामस्मरण हमें आध्यात्मिक परम्परा से प्राप्त हुआ बहुत महत्त्व का साधन है। आध्यात्मिक साधना का एक अंग है।

भगवान का नाम रटने से—जप करने से—ललकारने से या उसकी धुन करने से मन एवं हृदय को शान्ति प्राप्त होती है। संसारी जीव भी नामस्मरण का उपयोग कर सकता है। ऐसा यह एक सरल साधन है। परन्तु ऐसा नामस्मरण जीवन में शान्ति, प्रसन्नता, उत्साह, उमंग किस तरह प्रेरित करता है, ऐसी बुद्धिगम्य समझ हमें क्वचित् ही देखने को मिलती है। सचमुच ऐसा कहा गया है कि नामस्मरण में श्रद्धा रखकर स्मरण किया करें। किन्तु ऐसा कहने में 'श्रद्धा' अर्थात् क्या इसे स्पष्ट करना पड़ेगा।

हमारे समय में पूज्य श्रीमोटा ने नामस्मरण की साधना से नवजीवन में प्रवेश किया था। (१९२२) और, उसी साधना में उत्तरोत्तर विविध पद्धतियों का अभ्यास द्वारा परमपद को प्राप्त किया (१९३९)। १९२२ में नर्मदामैया के किनारे रणछोड़जी के मंदिर में मिले एक साधु ने

बतलाया था कि, 'हरि:ॐ' का रटन करने से मिरगी मिट जाएगी। किन्तु उस समय के चौबीस वर्षीय युवक श्रीमोटा के मन में प्रश्न उठा था कि नामस्मरण—जप से क्या कोई रोग मिट सकता है ? उनकी बुद्धि इस तथ्य का स्वीकार नहीं करती थी। फलत: श्रद्धा भी न थी। किन्तु महात्मा गाँधी एवं उनकी आध्यात्मिक माँ के वचनों पर विश्वास रख नामस्मरण का प्रयोग किया। इस प्रयोग के परिणाम से पूज्य श्रीमोटा ने कहा कि श्रद्धा से नामस्मरण होना चाहिए यह बात भले ही सच हो, **परन्तु नामस्मरण के प्रयोग से श्रद्धा उत्पन्न होती है, यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है।** चार घण्टे तक लगातार नामस्मरण करने से मिरगी का रोग मिटा सही पर उसके अलावा जो आंतरिक शक्ति पैदा हुई इससे उन्होंने उस साधन को पकड़े रखा और अखण्ड स्मरण से जीवन के परम आदर्श को पाने हेतु यानी प्रभुपद प्राप्त करने के—स्वरूप का साक्षात्कार सिद्ध करने का ध्येय पैदा हुआ।

नामस्मरण के प्रथम प्रयोग के अनुभव के बाद मन, मति, प्राण, अहम् आदि करणों के गुणधर्म भी विघ्नरूप बनते। अंत:करणों को स्मरणभाव में दिशा देने के लिए उन्होंने प्रार्थनाएँ कीं। 'मन को' संबोधित कर (१९२३) उन्होंने जिन पंक्तियों को गाया है, उनमें से कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत करने से समझ आएगा कि पूज्य श्रीमोटा ने मन के लिए कैसा मंथन किया है :

हृदय आदर कर प्रेम से नाम लेना।
प्रभु के रस में डुबा ले चित्त को,
सभी विकृति को पूरी जलाकर
मथ-मथकर विशुद्धि बढ़ाओ। ९५

नाम के प्रताप से तू है अनजान क्या ?
तुझे कहना कुछ बाकी रहा क्या ?

रटा जो तूने वह निरर्थक रहा क्या ?
तुझे अभी भी भान नहीं आया क्या ? ९७
गिनाउ क्या तुम्हें नाम के प्रताप ?
क्या बताऊँ मैं उस शक्ति का माप ?
ज्ञात हुआ तुम्हें कुछ चंचु प्रवेश से,
लेकर बोध-उससे बढ़े जा सदा। ९८
हरिनाम को चित्त में तू छापकर
हृदय से श्रेय-प्रेय दोनों साध ले,
सदा प्रभु आश्रय में लीन रहकर,
स्मरण बिना तू न एक घड़ी खोना। १०२
स्मरण कर करके होना एक ध्यान,
स्मरण कर करके होना एक चित्त,
स्मरण कर करके होना एक राग,
स्मरण कर कर होना एक प्रेम। १०५
हृदय से नाम के जाप की प्रेममाला-
बहाओ पद से सदा गंगधारा,
शांत कर समस्त बुद्धि एवं चित्तभाव,
वहाँ होमो प्राण की वृत्ति सारी। १०७

पूज्य श्रीमोटा उस समय हरिजन सेवक संघ में सेवा का कार्य कर रहे थे। काम करते हुए नामस्मरण का काम जारी ही रखते। यह नाम प्रेम से लिया जाय इसके लिए जो चटपटी जागनी चाहिए उसके विषय में तथ्यगत बातें आपश्री ने १९२४ में की। अनेक प्रार्थनाओं में से एक प्रार्थना में किस प्रकार व्यक्त हुई है, इसका यह दृष्टान्त है।

गहरायी से रहता हृदय में स्मरण नित्य प्रभुभाव से,
सेवाकार्य हुआ करे मेरे द्वारा सदा अनहद प्रेम से;

भावों से भरा छलकाता रहे हृदय मेरा सदा हे प्रभु !
श्रद्धाभक्ति रहे तुझ पर बनी, ऐसी कृपा दे प्रभु !
लोभी को धन प्यारा है जैसे, वैसे ही कामी को नारी,
वैसे ही मैं तेरा नाम स्नेहमय करने हृदय में रखूँ भावना,
रहा न जाय एक पल तुम बिन तू अग्नि ऐसा प्रभु
हृदय में प्रज्वलित कर विरह का भले ना जीऊ।
भले ही प्राण चले जाँय प्रभु और भले ही मृत्यु कभी आ जाय,
भले ही दुःख के पहाड़ हों, नहीं चिन्ता, सिर पर क्यों न पड़े
किसी भी तरह भूल न जाऊँ जरा भी नाम तेरा प्रभु !
तुम्हारे ही पास इतना दीन मैं माँग रहा हूँ प्रभु !

('जीवनदर्शन' आवृत्ति : सातवीं, पृ. ७-८)

प्रभुमिलन की तमन्ना लगनी तो लगी थी। किन्तु इस प्रार्थना में अपने जीवनध्येय को फलीभूत करने का प्राणान्तक निर्णय दिखाई देता है। इसमें जोश भी है। उपरोक्त प्रार्थना में कर्म, भक्ति है तथापि इसमें हृदय की छटपटाहट विशेष है।

इस से समझ आता है कि नामस्मरण मन और हृदय में प्रतिष्ठित हो तो जीवनविकास की साधना में गति आये। पूज्य श्रीमोटा ने नामस्मरण को प्रयोगात्मक रूप में स्वीकार कर उसे इतना सारा और इतने सारे ढंग से अभ्यस्त किया है कि इसका इतिहास न्यारा है। **इसकी विशेषता यह है कि आपश्री ने अपने अनुभव के प्रत्येक चरण को बुद्धिग्राह्य बनाया है। नामस्मरण से स्वयं जिस शिखर पर पहुँचे वहाँ तक के सारे ही चरणों का स्पष्ट पृथक्करण आपश्री के पत्रों के ग्रंथों में तथा दूसरे असंख्य पद्य-ग्रंथो में भी है।**

प्रभु का नामस्मरण अर्थात् क्या ? प्रभु यानी क्या ? प्रभु का धाम कहाँ ? उनका रूप कैसा ? ऐसे प्रश्न किसी भी जीवात्मा में उठें यह

स्वाभाविक है। पूज्य श्रीमोटा ने जीवनसाधना के आरंभ में ही इन प्रश्नों की प्रथम बौद्धिक स्पष्टता की। 'तुज चरणे' की स्तुति में उन्होंने भगवान कैसे हो सकते हैं ? और किस - किस रूप में उसे अनेक संतभक्तों ने अनुभव किया और पहचाना है ? तथा अखिल ब्रह्माण्ड में वह किस तत्त्वरूप में रहकर विलस रहा है, उसका भावनात्मक एवं बुद्धिग्राह्य आलेख देखने को मिलता है। इससे हमें समझ में आता है कि प्रभुपथ पर चलने के लिए आपश्री पूर्णरूप से कूद पड़े तब अनेक बुद्धिग्राह्य स्पष्टताएँ स्वयं कर डालीं थीं।

नामस्मरण एक सरल, सहज और कोई भी व्यक्ति उपयोग में ले सके, ऐसा सूक्ष्म साधन है। भगवान के नाम का जप करने से शान्ति, हलकापन कैसे मिल सकते हैं, उसका निरूपण पूज्य श्रीमोटा ने किया जो 'स्मरणविज्ञान' के समान है। यह घटना हमारे देश के आध्यात्मिक परम्परा में विरल है। क्योंकि नामस्मरण की महिमा तो अपरम्पार है। अनेक संत भक्तों ने गान किया है, परन्तु उसकी बुद्धिग्राह्य और तर्कबद्ध समझ हमें पहली ही बार श्रीमोटा के पास से मिलती है।

प्रभु के नामस्मरण से शरीर के रोग किस तरह मिटते हैं तथा कामक्रोधादि किस तरह शमित होते हैं, इस तथ्य को पूज्य श्रीमोटा ने महात्मा गाँधीजी को बतलाया था। इससे गाँधीजी प्रसन्न हुए थे और उत्तर में बतलाया, 'इस तथ्य की प्राप्ति से मुझे लगता है कि तुम आध्यात्मिक विज्ञान के बड़े विज्ञानी बनोगे।' (इस हकीकत को पूज्य श्रीमोटा ने श्री रमणभाई अमीन के साथ किये सत्संग में बतलाया था।) H_2O संज्ञा से पानी अभिप्रेत है, किन्तु इसमें दो प्रकार के वायु के निश्चित प्रमाण इकट्ठे हुए हैं, इसप्रकार से पानी बना है, ऐसे अनेक प्रयोगों के पश्चात् सिद्ध हुआ है। इसी तरह पूज्य श्रीमोटा ने नामस्मरण

के अनेक प्रकार के प्रयोगों के पश्चात् जीवनसिद्धि प्राप्त की है। अर्थात् प्रयोग सिद्ध होने के बाद आध्यात्मिक विद्या का रहस्य आपश्री ने सामने रखा और कोई भी बुद्धिशाली इसे स्वीकार कर सके इसतरह आपश्री ने प्रस्तुत किया है। फलतः नामस्मरण एक वैज्ञानिक यथार्थ रूप में व्यक्त हो पाया है।

सारा ब्रह्माण्ड पाँच तत्त्वों से भरा हुआ है, किन्तु मात्र पृथ्वी ही ऐसा ग्रह है कि जहाँ पाँचों ही तत्त्व साथ में हैं। ये पाँचों ही तत्त्व इसकी तन्मात्राएँ और तीन गुणों के साथ उसके संबंध को समझाकर नामस्मरण से आकाश तत्त्व किस तरह अग्र रहे और सत्त्वगुण के उदय होने से रजस-तमस के गुणधर्म किस तरह गौण हो जाते हैं, इसकी समझ हमारी मति को अत्यन्त प्रकाशित करती है। शब्द का मूल और शब्द के प्रकार, उसकी गति आदि के निरूपण से शब्दशक्ति का आह्लादक परिचय होता है। पूज्य श्रीमोटा ने 'ॐ' शब्द का महत्त्व समझाया है, उसमें तात्त्विक दृष्टि के अलावा बुद्धिग्राह्य अभिगम भी है। 'ॐ' के बाह्याकार की स्वयं स्वीकार की गई भावना भी जानने जैसी है। 'ॐ' में दिखाई देनेवाला '३' अंक जो भी सब तीन से ही उपजा है और तीन से ही टिका है और उसमें ही लीन हो जाता है, यह संकेतित करता है। उत्पत्ति, स्थिति और लय; सत्त्व, रजस और तमस इनमें से यह विश्व स्फुरित हुआ है। यह '३' के साथ जुड़े मोड़ वाली रेखा द्वारा संकेतित होता है। जगत और जगत के सारे पदार्थों एवं भावों से पर ईश्वरभाव अर्ध चन्द्राकार के चिह्न से प्रकट होता है। इससे भी पर बिन्दु रूप में परब्रह्म का प्रतीक है। इस तथ्य को आपश्री ने एक सार्वजनिक सत्संग में बतलाया था।

ॐ के उच्चारण से कहाँ-कहाँ स्पर्श होता है और उसके आंदोलन कैसे फल लाते हैं, इसका निरूपण भी स्पष्ट है। जप का कोई भी शब्द भले ही हो पर ॐ से माधुर्य जुड़ता है, यह तथ्य स्पष्ट है। यह तो प्रयोग

करनेवालों को अनुभव होगा ऐसी सच्चाई है। जप हेतु शब्द का चयन करने के पीछे का विवरण भी हम सब स्वीकार कर सकें ऐसा सरल व्यवहार है।

जप किस तरह से करें, किस भाव से करें, उस समय उद्देश्य का ध्यान किस तरह रखें—आदि बातों द्वारा नामस्मरण की पद्धतियाँ आपश्रीने बतलायी है। इसमें विज्ञान की पृथक्करणात्मक पद्धति का हमें परिचय होता है। नामस्मरण भाव के साथ होना चाहिए। दिल से होना चाहिए। प्रेम से होना चाहिए। स्वयं इस तरह स्मरण करते जिस तरह मथन करना पड़ा था, इसका यथातथ्य वर्णन आपश्री ने इस गजल में किया है।

स्मरण क्या कोरा कोरा वह शुरू-शुरू में हुआ,
किन्तु जैसे अभ्यास बढ़ता गया त्यों वह बढ़ता गया।
अधिक से अधिक समय मैंने स्मरण में ही बिताकर,
स्मरणभाव प्रेरित करने हेतु मथन बहुत किया।

सतत लगे रहने लगातार प्रयत्न रत रहते,
प्राप्ति होने पर हृदय क्या स्मरण में डूब पड़ा!
प्रयत्न से तत्परता बढ़ी है जहाँ, प्रयत्न वह होने विषयक
हृदय कैसे उछला है! प्रयत्न फलीभूत हुए हैं।

('जीवनस्मरण', पृ. ८)

आरंभ में कोरा-कोरा स्मरण हो पर उसका अभ्यास न छोड़ें। अधिक से अधिक समय नामस्मरण में बिताते हुए स्मरण करने का भाव प्रेरित हो इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए। ऐसे लगातार प्रयत्न करने से हृदय में नामस्मरण का रस निष्पन्न होता है। जब प्रयत्न रत रहने से रस निष्पन्न हुआ है ऐसा जानने के बाद प्रयत्न किया करने में

हृदय का उल्लासभरा उत्साह रहा करता है। इन आठ पंक्तियों में पूज्य श्रीमोटा ने स्मरण को रसमय बनाने की प्रक्रिया सूचित की है। साथ ही निष्ठापूर्वक के प्रयत्न का गौरव भी प्रदर्शित किया है।

प्रभु का नामस्मरण अंतःकरण को कैसे तालीम देता है, यह 'नामस्मरणसाधना' वाले प्रकरण में विवरणयुक्त प्रस्तुत किया है। **नामस्मरण के साथ प्रार्थनाभाव रखने का आपश्री सूचित करते हैं। क्योंकि प्रार्थना से हृदय में भाव जागते हैं और इन भावों को नामस्मरण के साथ जोड़ने से यह स्मरणभाव हृदय में गहरा उतरता है। शब्द मात्र ही नहीं किंतु शब्द में निहित भाव हृदय में संलग्न रखना है। कर्म करते करते स्मरण से जो धुन जगती है, एक प्रकार का लय जागता है, उसे जागृतिपूर्वक हृदय में मोड़ते रहना हैं। नामस्मरण की साधना असावधान होकर करने की साधना नहीं है।** इस तथ्य का निदर्शन आपश्रीने प्रस्तुत गजल में किया है।

'हरिःॐ' भाव की धुन करते कर्म में जहाँ तहाँ,
पिरोया कर हृदय में जागते रहना जहाँ तहाँ।
स्मरण प्रभुभाव का गहरा किया करना स्तवन करके
प्रभु जगाने हृदय में यह सब जरूरी है। (पृ. १५२)

बिना प्रभुस्मरण के, कुछ भी कर्म न होने दो,
स्तवन अंतर में करते हुए प्रभु को, सब होने दो। (पृ. १४२)

● ●

प्रभु के नाम की धुन, जगाकर लगाकर,
मति, मन, चित्त, अहं, प्राण रखो जोड़कर चरण में। (पृ. १२०)

('प्रणामप्रलाप', आवृत्ति १)

हमारे अंतःकरण—मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम्—नामस्मरण से किस-किस रूप में प्रकट होते है, उसके कैसे लक्षण दिखते हैं और उसकी शक्ति को नामस्मरण को किस तरह प्रभुशरण में मोड़ ले सकते है—यह सारी पद्धतियाँ पूज्य श्रीमोटा ने बतलाई हैं ।

पूज्य श्रीमोटा ने नामस्मरण विषयक एक महत्त्वपूर्ण बात कही है। **नामस्मरण लगातार, सतत लिया जाय और ऐसा करते हुए निरन्तरता बनी रहने के पश्चात् ही शुद्धि अनुभव होती है। अतः जब तक नामस्मरण निरन्तर, अखंड न हो, वहाँ तक स्मरणसाधना का पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता है ।** नामस्मरण मनहृदय में साथी बनकर निरंतर बना रहे, इसके लिए पूज्य श्रीमोटा ने एक प्रार्थना की रचना की है। जिन जीवों का इन दिशा में मुँह फिरा है, किन्तु गति विधि नहीं है, उनके लिए इस दिशा में जाने का निर्देश प्राप्त हो ऐसी यह प्रार्थना है । हमारे दैनिक व्यवहार की तथा हमारे अंतःकरणों के रुखों की पूरी स्पष्टता इस प्रार्थना में हैं। ऐसे सभी क्षणों में नामस्मरण चलता रहे ऐसी भावना प्रतिदिन दृढ़ होनी चाहिए।

स्मरणभावना
(हरिगीत)

प्रिय नाम को हृदय में स्मरण करते रहेंगे हम बहुत प्रेम से,
प्रिय नाम को हृदय में स्मरण करते रहेंगे हम अनेक ढंग से,
प्रिय नाम को हृदय में स्मरण करते रहेंगे हम अनन्य निष्ठा से,
तुम्हारे नाम का प्रभु तंतु जरा भी न छोड़ेंगे हरगिज कभी ।
जीवन के अतिशय कठिन दारुण झंझावात में,
सभी दिशाओं में सूझे नहीं ऐसे जीवन-अंधकार में,
जीवन की चढ़ती और पड़ती मध्य पलपल सदा,
तेरे नाम का प्रिय स्मरण सदा साथी रहे मन-हृदय में ।

संसार के कर्तव्य में, व्यवहार कर्ताओं के साथ में,
सभी कार्यों में, खाते, पीते, उठते तथा बोलते ;
जो जो कुछ करें, सभी के साथ व्यवहार करते सदा,
तेरे नाम का प्रिय स्मरण सदा साथी रहे मन हृदय में।

कठिनाइयों में, विघ्न में तथा उपाधियों में जगे,
झगड़े और कलह में, दिल में होते सभी दर्द में,
दिल की दुविधा में और आ पड़ी उलझन में,
तेरे नाम का प्रिय स्मरण सदा साथी रहे मन हृदय में।

मन के विचारों में और मन की सभी वृत्तियों में,
मन वासना में, पाप में, चित्त के सभी संस्कारों में;
मन के खेल और कूद में, मन के रमण और रुख में,
तेरे नाम का प्रिय स्मरण सदा साथी रहे मन हृदय में।

हमारे शरीर से बनती क्रिया में, इन्द्रियों के विषय में,
हमारे शरीर के रोम–रोम में, हृदय के रक्त में;
नस–नस और नखशिख तथा शरीर के नवद्वार में,
तेरे नाम का प्रिय स्मरण सदा साथी रहे मन हृदय में।

षट रसों के सभी स्वाद में, मीठी मीठी सभी गंध में,
उर चेतना में, बुद्धि में, चित्त प्रेरणा में, प्राण में;
हमारी संवेदनाओं में, भावनाओं में, प्रेम में, रस में सभी,
तेरे नाम का प्रिय स्मरण सदा साथी रहे मन हृदय में।

आधार सभी निज का सदा मान, आधार ले जो करता,
माँ को अतिशय लाड से जैसे बालक पुकारता;
बिछड़ा हुआ माँ से हरपल करता क्या रेंकता,
उसी तरह तेरा नाम प्रभु ! स्मरण करावें तान में।

जीवन के सभी भंग में, जीवन जैसे सभी रंग में,
जीवन के यह अटपटा तिरछे–खड़े सभी तार में;
मेरा भले ही कुछ भी हो सर्व जीवन–रीति में,
रसीला बुना वहाँ करें प्रभु नाम तुम्हारे भाव में ।
संबंधिओं, स्वजनों की सभी बातचीत में,
संसार के व्यवहार में और जो होवे सभी कार्यों में;
पत्नी और परिवार में भले ही पिरोये हुए हों,
उस उस दशा में हे प्रभु ! तेरा प्रिय नाम हृदय में बसे ।
प्रिय नाम सूर्य उदय द्वारा भगाये जीवन–अंधकार सभी,
ऐसी कृपा से जीवन में हमें पल्लवित–पुष्पित करें,
चाहना हमें लगे तेरे दिव्य और प्रिय नाम की,
प्रगट हों हमारे जीवन में छायारूप में नाम प्रेम की ।
सारा जीवन पट के ताने और बाने हों,
भीगी हो रग–रग तेरे प्रेम के रंग में,
तेरे प्रिय नामस्मरण से सदा थापित हो,
ऐसा प्रभुपद हो समर्पित यह जीवन हो तेरी कृपा ।
तेरे नाम की महिमा गाते कई ऋषि औ' भक्त कवि,
मैं तो बिचारा बावला, कह कहकर भी क्या कहूँ !
जैसे सूर्य के आगे जुगनू, समुद्र के आगे गड्ढ़ा,
हीरा के आगे जैसे काँच ऐसा तो मैं नादान हूँ ।

('श्रीगंगाचरणे', आवृत्ति १, पृ. ३१–३२)

पूज्य श्रीमोटा ने नामस्मरण विषयक अत्यधिक मात्रा में लिखा है। उसके अनेक पहलुओं का निरूपण किया है। स्वयं की साधना का इतिहास आलेखन करते हुए यह सब लिखा है। पर यह सब इस छोटी पुस्तक में समाविष्ट नहीं किया गया है ।

पूज्य श्रीमोटा के अन्य पद्य ग्रंथों का अध्ययन किया जाय तो बहुत से गूढ़ रहस्यों की प्रतीति जिज्ञासुओं को अवश्य होगी।

'नामस्मरण' का यह संकलन पूज्य श्रीमोटा के अक्षर स्वरूप की उपासना का परिणाम है। अनेक वर्षों से ऐसे एक संकलन करने की भावना रहा करती थी। प्रिय झीणाभाई पटेल ने इस भावना को साकार होने में प्रेरणा दी, इसके लिए उनका हृदयपूर्वक आभार मानता हूँ। यह संकलन नामस्मरण की समग्रता का समावेश नहीं कर पाया है, इसे स्पष्ट कर लेना चाहिए। तब भी श्रेयार्थी को नामस्मरण विषयक बौद्धिक स्पष्टता होने में यह संकलन सहायक हो सकेगा, ऐसी प्रतीति है।

इस पुस्तक के संकलन-—संपादन का कार्य पूर्ण करने में हरि:ॐ आश्रम सुरत के कार्यकर्ताओं ने बहुत प्रेम और उत्साह से अनुकूलता कर दी इसके लिए उनका आभारी हूँ।

मुझे श्रद्धा है यह छोटी-सी पुस्तक जीवन में नामस्मरण लेने की पद्धति प्रेरित करेंगी और उसके उद्देश्य का ज्ञान जागृत होगा।

— रमेश भट्ट

'संतस्मृति' १, एस.बी.आई, ओफिसर्स सोसायटी,
नारायणनगर, पालडी, अहमदाबाद-३८०००७.
फोन नं. २६६११३४३, २६६१४८२९

दि. २१-२-१९९५

॥ हरि:ॐ ॥

नामस्मरण

■

पूज्य श्रीमोटा

॥ हरिः ॐ ॥

१. नामस्मरण महिमा

नामस्मरण यह तो हमारा एक मुख्य अंग है ही । यह तो हमें धनंजय के गांडीव की तरह, पतितपावनी गंगा की तरह अथवा बर्फ को पिघलानेवाले सूर्य की किरणों की तरह है । जहाँ नदी समुद्र को मिलती है, वहाँ संगम स्थान पर कितनी ही नदियाँ जोर से समुद्र में अंदर तक धंस आती हैं; उसी प्रकार नामस्मरण सरिता की असर है । यह उपमा भी ठीक नहीं है । नदी की प्रचंड बाढ़ में बहते मनुष्य को कोई लकड़ी मिल जाए उसके जैसा; भूख से व्याकुल को अन्न की प्राप्ति हो जाए, तृषित कंठ को जल की ठंडक और मिठास, जैसा कई कठिनाइयों को पारकर अंत में अभिसारिका को मिलनेवाले प्रेमी की तरह कंजूस के धन की तरह अथवा प्राणों से प्यारे पुत्र की तरह, हृदय के भाव जैसा, अकाल में वर्षा जैसा, कांक्षी को इच्छित वस्तु प्राप्त हो वैसा, सत्संगी को संगी मिलने जैसा अथवा श्रमित को आराम जैसा है । यह तो सारा साहित्यिक वर्णन कहलाएगा । मिठाई का वर्णन पढ़ने या सुनने से वह मुँह में थोड़े ही आ जाएगी ? ऐसे वर्णन से हमारी तृषा तृप्त नहीं हो सकती ।

नामस्मरण, यह हमारा एक प्रकार का जीवन है । किसी दिन भोजन किए बिना रहा जा सकता है, पर जिसे भगवान की शरण में जाना है, उसे नामस्मरण के बिना एक दिन भी नहीं चलना चाहिए । स्थूल रूप से, प्रत्यक्ष रूप से, नामस्मरण के बिना स्थूल जीवन चल सकता है पर प्रभुमय जीवन के लिए नामस्मरण प्राण समान है । वह न हो तो कुछ भी नहीं है अर्थात् ध्यान आदि करते हुए भी उसका सविशेष ध्यान रखना तो हम में प्रधानरूप से हैं ही । किन्तु जब से हमें उसका विशेष ख्याल आए तब से इस विषय में उत्साहित हो, लग जाएँ तो

अच्छा ही है। भगवान के नाम की महिमा तो अपरम्पार है। नामी से भी नाम बढ़कर हो जाय, यों कहा जाएगा।

भगवान के नाम की महिमा अपरम्पार है। इसका कारण है कि हमारे में रहे तत्त्वों को विकसित करने की अजब शक्ति नामस्मरण में है। जितना अधिक भगवान का स्मरण रहे, इतना अधिक भाव हमारे में अपने आप उसके प्रति बढ़ता है। क्योंकि नाम के पीछे जीतेजागते संकल्प का बल ही होता है और प्रेरणात्मक बल नामी की भावना को मूर्तिमंत हमारे हृदय में कर देता है। किसी भी काम को करते समय यदि नामस्मरण रहा करें तो वह काम भगवान के एक साधन रूप में ही करते हैं। ऐसी भावना हम में गहरी उतरती ही जाती है। क्योंकि हमें गहरी अनुभूति तो नामस्मरण के कारण रहेगी या हम वह काम करते हुए भगवान की शक्ति का आह्वान जाने-अनजाने कर रहे हैं। इसलिए यह शक्ति कुछ अंश में भी हम में उतरेगी ही। इस शक्ति को जब हम नामस्मरण से ज्ञानपूर्वक जाग्रत करते हैं, तब उस शक्ति को बढ़ाने हेतु हमारे अंदर भूख जागने लगती है। तमन्ना जगाती है। हमारे जीवन में और जीवन के प्रत्येक कर्म में अपनी सुगंध फैलाती है और अपने प्रति प्रेम जगाती है तथा पैदा करती है; और इस प्रकार ब्याज का ब्याज जुड़ता ही जाता है। इसप्रकार पूँजी कितनी ही गुनी बढ़ती जाती है, वैसे नामस्मरण का एक छोटा-सा झरना अपने जैसे अनेक झरनों को अपनी तरफ खींचकर अपने में समाविष्ट कर एक बड़ी नदी बन जाती है, जो अंत में भगवानरूपी अनंत सागर में समा जाती है। इस नामस्मरण की महिमा का वर्णन मात्र अनुभवी ही कर सकता है। इसका आनंद तो मात्र इसे लूटनेवाले ही चख सकते हैं। इसकी महिमा विषयक इक भजन है। उसमें लिखा है—

गाया तुलसीदास ने इसे, भक्तजनों ने लिया;
रंक है उसे मैं क्या जानूँ, मैं तो छोटा बालक।

नामस्मरण की महिमा संसार में अनेकबार सिद्ध हो चुकी है। यह कोई कपोल कल्पित नहीं है, पर प्रसिद्ध बात है। अनेक संत भक्तों ने उस पर जीवन न्योछावर किये हैं। वर्तमान में भी ऐसे हैं कि जिनका जीवन नामस्मरण से धन्य हुआ है। महात्मा गाँधीजी ने भी स्वयं प्राप्त शक्ति का आधार नामस्मरण है, अनेक बार घोषित किया है। वे तो शरीर के सुख के लिए भी नामस्मरण का उपचार बतलाते थे, यह प्रसिद्ध बात है। इस प्रकार नामस्मरण एक रामबाण इलाज के रूप में सिद्ध साधन है। वह प्रारंभ में दिल को प्रोत्साहन देता है, किन्तु बाद में पूरे आधार का दिव्य रूपांतर—परिवर्तन करा देता है। उतनी अवस्था में पहुँचने से पहले भी वह दुःखी दिल को आराम देता है, उसकी तप्त भावना को शान्त करता है, उसका प्रेम विकसित करता है तथा गहराई देते हुए प्रेमी में परिवर्तन लाता है। यह सब कुछ है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति विषयक अभिमान करनेवाले कितने ही कहते हैं कि वेद के समय में विमान भी थे और इंजिन भी थे। सभी कलाएँ और शास्त्र वेदों में लिखे पड़े हैं, वे ऐसे दावा करते हैं। किन्तु नामस्मरण के विषय में ऐसे दावे का प्रश्न ही नहीं रहता। क्योंकि सारी वस्तुओं का समावेश इसमें हुआ है और भिन्न-भिन्न देश के तथा काल के असंख्य संतों का इतिहास उसका साक्षी है। जगत में दिखाई देनेवाली सारी समृद्धि भी उनके प्रभाव के सामने धूल के समान है।

ऐसा नामस्मरण जब हमारे हृदय में लगातार होने लगे तब हमारा सूर्य उगने लगा है और सच्चे जीवन का प्रारंभ होने लगा है, ऐसा मान सकते हैं। जिस हृदय में जिज्ञासा और तमन्ना जागी होगी, उसे ऐसा होगा ही। जिसे ऐसी वृत्ति भी जागी है, उसे भी यथाश्रम से प्राप्त होगा ही, इसमें कोई शंका नहीं है। भगवान अपने प्रागट्य उद्भव होने हेतु हम से अधिक आतुर हैं, यह बात निश्चित हैं। इसीलिए हमें अधिक जागृति और सावधानी रखने की आवश्यकता रहती है, क्योंकि हमें ऐसी भूमिका के निर्माण में लगे ही

रहना चाहिए। हमारे जीवन में कोई अन्यथापन नहीं रहना चाहिए। बीज बोने के लिए जमीन को जिस प्रकार एकरस कर दी जाती है, वैसे ही हमें करते रहना है। सचमुच में तो भगवान को प्रगट होने जैसा रहता ही नहीं है। अमुक ढंग से हो तो वे अपने आप प्रगट होंगे ही अथवा प्रगट हो रहते हैं। किन्तु हमारे जीवन का क्रम और जीवन की दृष्टि का क्रम ये दोनों विपरीत दिशा के होते हैं। मूलतः इतनी ही बाधा है। एक जगह गाया है, 'संतकृपा से छूटे माया, देखो काया निर्मल होती रे!' वहाँ भी संतकृपा अर्थात् भगवान की कृपा। उसकी कृपा हो या मिले तभी ऐसी कृपा 'मंत्र' रूप में प्राप्त होनेवाली है, यह निश्चित बात है। मात्र हमें सभी कार्यों में अपना मन लगाकर, यज्ञ रूप में, उसकी शरणागति में किया करें और उसमें विश्वास रखें कि योग्य समय पर करेंगे ही। बस इतना हुआ यानी हमारा काम निपटा ऐसा हम हृदय से निश्चित कर अपने हिस्से का जो कुछ भी हो उसे पूरी दक्षता से किया करें और किसी को भी कहना न पड़े इस ढंग से करें। ऐसा आचरण किया करें तो हम भी निश्चिन्त।

('जीवनसंदेश' तीसरी आवृत्ति, पृ. २३९ से २४३)

नाममहिमा
(हरिगीत)

शास्त्र मैं न पढ़ा, वेद-वेदान्त को,
न कुछ जाना उस विषय में;
तब भी प्रिय नाम का एक शरण लिया,
हृदय स्थिर होते वह सब पाया। १

उस प्रभुनाम की महिमा सभी,
कैसे मैं मूर्ख वर्णन कर सकूँ ?
सूर्य ढँका न रहता बादलों से कभी,
तेज थोड़े समय में होगा प्रकाशित। २

यदि थोड़ा उतरो कुछ गहरा, वहाँ देखो,
नामरूप में सभी ज्ञात होगा;
'नाम' बिना क्या विश्व में कुछ देखा ?
नाम सर्वस्व है जहाँ तहाँ सर्वत्र। ३

तो भी मानव हृदय में वह न ठहरे,
फिर नाम कैसे कुछ कर सकता है ?
दृष्टि जहाँ जहाँ पड़े नाम वहाँ वहाँ दिखे,
नाम के बिना कुछ भी नहीं कहीं। ४

यदि नाम न हो कहीं भी किसी का,
तो सर्व अटक पड़ेगा सर्वत्र,
नाम आधार से सभी कुछ होता,
'मैं'पन मूर्ख मानवी रखता। ५

मानव मूर्खता क्षुद्र कैसे दीखे,
त्याग मिथ्यात्व का कैसे आये ?
सूर्य के आगे जुगुनू क्षुद्र है,
उससे भी अधिक नाम आगे। ६

बारात में कोई भी न जाने तब भी,
वर की बुआ हो खूब मलके,
बोझ का पोटला मानव शीश पर ले,
वर की माँ नहीं फिर भी मौर लगाये। ७

नाम रूपी नथनी में हृदय संलग्न होने पर,
ले जाएगा नाम स्वयं ही,
वहाँ कोई न भार न कोई चिन्ता,
दिव्य निश्चिन्तता नाम की गोद में। ८

('जीवनपाथेय' आवृत्ति ३, पृ. ११०-११)

॥ हरि:ॐ ॥

२. नामस्मरण का प्रयोग

■ नामजप का प्रारंभ

मेरे शरीर में मिरगी हुई थी, तब आराम लेने के निमित्त छुट्टी लेकर दो बार नर्मदा तट जाना पड़ा था। एक बार तो मेरे साथ श्री महेशभाई मेहता और श्री भानुप्रसाद पंड्या थे। दूसरी बार तो एकदम अकेला था। नर्मदा नदी के मोखड़ी घाट (ता. नांदोद, जि. नर्मदा) के पार रणछोडजी का एक मंदिर था। वहाँ कुछ दिन रहा था। वहाँ एक साधु महात्मा रहते थे। उनकी मैं रोज सेवा किया करता। वहाँ भी इस शरीर को चार-पाँच बार मिरगी का हमला हुआ था। वहाँ से निकलते हुए मैं उन साधु महात्मा के पैरों पड़ा और उनके आशीर्वाद माँगे। उन्होंने मुझे भगवान ('हरि:ॐ') का स्मरण करने को कहा और उससे रोग मिट जाएगा ऐसा भी कहा था। किन्तु तब मेरे मन ने यह सोचा कि इस साधु महात्मा ने जंगल की कोई जड़ीबुट्टी दी होती तो उसमें मुझे विश्वास बैठता, परन्तु भगवान के मात्र नामस्मरण से रोग मिट जाय ऐसा एकदम सच और श्रद्धाप्रेरक नहीं लगा था।

इतना ही नहीं साधु महाराज ने मुझे ऐसा भी कहा था, 'एक वर्ष बाद तुम्हें कोई सद्‌गुरु भी मिलनेवाले हैं, जो तुम्हारे जीवन का विकास करायेंगे।' किन्तु उस समय 'जीवन' और 'विकास' ये मेरे लिए तो मात्र शब्द ही थे। तब तो देश की सेवा करने की उत्कट धुन थी, यही मेरे लिए परम सत्य था। सेवा की उस उत्कट धुन से प्रेरित होकर गरीबी की स्थिति में भी टिके रहना संभव हुआ था।

इस घटना के बाद मैं वडोदरा आ गया। वहाँ मेरी एक आध्यात्मिक माँ रहती थी, जिन्हें मैंने 'मनने' गुजराती पुस्तक में भावांजलि अर्पित की है। उनके मकान की तीसरी मंजिल पर शरीर को मिरगी का हमला होने से शरीर सीड़ियों से लुढ़कते-लुढ़कते नीचे दूसरी मंजिल पर आ पड़ा। और ईंटों के चबूतरे से घिसने के कारण शरीर छिलने से साधारण खून की रेखाएँ फूट पड़ी थीं। उस समय कुछ होश आने पर नर्मदा के उस साधु महात्मा के मुझे दर्शन हुए और उन्होंने मुझे कहा, 'अरे, भगवान का स्मरण तो कर देखो ! प्रयोग करने में तुम्हारा क्या जाता है ?' यह सब प्रगटा तो सही किन्तु उस समय मेरे मनादिकरण जरा भी इस प्रकार की भावनावाले न होने से उस साधु महात्मा के वचन और उनके संस्कार को बिलकुल महत्त्व नहीं दे पाया था। तत्पश्चात् शरीर ठीक होने पर ये सारी बातें मैंने अपनी आध्यात्मिक माँ को बतलायीं। मेरी सारी बातें सुनकर वे तो बहुत खुश हुईं। उन्होंने कहा, 'अरे चुनिया, तुम तो बड़े भाग्यशाली हो। तुम अब से भगवान का स्मरण ही किया करो। उठते-बैठते, घूमते-फिरते, खाते-पीते सभी कर्म करते हुए मात्र भगवान का स्मरण करने अब लग जाओ और तुम्हारा रोग अवश्य मिट जाएगा।'

उन दिनों मुझे उन साधु महात्मा से अधिक मेरी इस 'माँ' पर अधिक विश्वास था। उनके इस तरह समझाने से ही भगवान का नाम लेने के लिए मैं प्रेरित हो सका।

('जीवनदर्शन' आवृत्ति आठवीं, पृ. २३७-३९)

परन्तु सचमुच पूछो तो मुझे ऐसे भगवान का स्मरण करने से शरीर का मिरगी रोग मिट जाये ऐसा हृदय में जरा भी विश्वास नहीं था। महात्मा गाँधीजी भगवान का स्मरण करते थे और नित्य अपने

पास माला रखते थे, इस वास्तविकता का मुझे पूरा पता था। इसलिए मैंने पूज्य श्रीगाँधीजी को एक पत्र लिखकर उसमें उपर्युक्त सारी हकीकत बतलाई।

पूज्य श्रीगाँधीजी ने मुझे तुरन्त पत्र लिखा कि भगवान का स्मरण करने से तो रोगमात्र मिट जाता है। उनके वचन में मुझे संपूर्ण भरोसा था। उसके बाद मैं भगवान का स्मरण करने लगा। इतना ही नहीं, परन्तु दृढ़ कठोर निश्चय किया और व्रत लिया कि प्रतिदिन ढाई घण्टे तो स्मरण करना है ही। न हो तो उस दिन जरा भी भोजन नहीं लूँगा, इस प्रकार मैं करने लग गया।

स्मरण ढाई घण्टे से भी अधिक होता। एक तो रोग मिटाने की गरज। फिर स्मरण लेते लेते कभी मुझे ऊब नहीं आयी। पन्द्रह दिन के बाद पाँच-दस मिनिट जोड़ता जाता था। इस प्रकार तीन महीने में प्रतिदिन चार घण्टे से अधिक भगवान का स्मरण होने लगा और इतने में भगवान की कृपा से शरीर को मिरगी का रोग मिट गया।

इसी समय के दौरान भगवान का स्मरण लेते-लेते जीवन में मुझे उत्साह, उमंग, सावधानी, उद्यम आदि प्राप्त होते लगने लगे। मेरे हृदय में यह सब संपूर्ण वास्तविक था। एक तो रोग मिटा और दूसरा योग्यता बढ़ने का अनुभव हुआ। इससे हृदय में हृदय से दुगुना प्रोत्साहित होकर श्रीहरि का स्मरण बढ़ाता गया। स्वप्रयत्न और हृदय के आनंद, उमंग और उत्साह से स्मरण का समय चौदह घण्टे तक तो अंकुरित हुआ, फलतः श्रीप्रभुकृपा से हृदय में हृदय से जीवन के ध्येय की सजगता जाग गई थी। जीवन में अब इस एक ही कर्म श्रीप्रभुप्रीत्यर्थ ही करना है, इसप्रकार मेरे हृदय में उन दिनों में सजगता जाग चुकी थी।

तद्‌पश्चात्‌ तो खेड़ा जिल्ले के बोरसद तालुका के बोदाल गाँव में एकान्त में एक खेत के पेड़ नीचे मैं सोया था। मेरे एक तरफ सद्‌गत श्री ठक्करबापा और दूसरी तरफ श्री श्रीकान्त सेठ सोये थे। वहीं साँप ने काटा और उसी समय बिजली की चकाचौंध की तरह मेरे हृदय में हुआ कि जीवनध्येय जब तक संपूर्ण सिद्ध नहीं होता तब तक मरूँगा नहीं। स्मरणसाधना प्रति दिन चौदह घण्टे होने से एक ऐसा डंके की चोट की तरह जीवन्त चेतनात्मक निश्चय जीवन में प्रकट हो चुका था ही। साँप के जहर का भयंकर सामना करने के लिए इसी निश्चय ने हृदय को बहुत दृढ़ बनाया। एक ओर साँप का जहर पूरी तरह से बेहोशी लाकर (भयंकर तीव्र, उत्कट से उत्कट वेदना लाकर) शरीर को मृत्युमय बनाने का प्रयत्न कर रहा था और दूसरी तरफ से जीवन का ध्येय प्राप्त न हो तब तक मृत्यु को न अपनाने का दृढ़ मनोबल जीवन्त निश्चय, उसका अति दृढ़ता से सामना कर रहा था। ऐसा घोर संग्राम हुआ तब हरिजन संघ के सभी कार्यकर्ता भी उपस्थित थे। उनमें से बहुत सारे आज भी जीवित हैं। बुलंद स्वर से मैं तो हरिस्मरण करते ही जा रहा था। बहुत से मुझे पूछ रहे थे, किन्तु किसी को भी कोई उत्तर नहीं दे पा रहा था। बस एक मात्र हरिस्मरण की धुन लगी थी। ऐसा प्रसंग कि जो भयंकर में भयंकर और जिसकी कसौटी में से, पार उतरना बड़ा कठिन था। श्रीभगवान की कृपा से उसमें से पार उतर सका और उसमें से स्मरण की अखण्डता प्रकट हुई। यह है स्मरण की साधना का छोटा सा इतिहास।

ऐसा स्मरण करते करते, ऐसे स्मरण की धुन की तान से एकाग्रता होते-होते, दिल लगने से, हृदय में एक प्रकार का भाव उमड़ने लगा। ऐसे भाव के मूल में से श्रीप्रभुकृपा से इस 'जीव' को प्रार्थना, भजन-कीर्तन, आत्मनिवेदन, त्याग, परमार्थ, सत्कर्म, समर्पण, सन्मुखता

आदि साधन फूटते गये। उसी के अनुसार अनुकरण होता गया। भावना को साकार करने से ही हृदय का सुषुप्त शक्तिबल जाग्रत होने लगता है, उसका भी मुझे हृदय में हृदय से हृदय का अनुभव हुआ। इस प्रकार मुझ में अनेक प्रकार के साधनों का प्रस्फुटन हुआ।

('जीवनआह्लाद' की प्रस्तावना से)

■ स्मरण के सोपान

श्रीभगवान की कृपा से 'इस जीव' ने किस प्रकार स्मरण किया है उसका अलग-अलग सोपानों का वर्णन इस गीत में हैं।

स्मरण की लत लगते ही दिल स्मरण में ध्यान मग्न हुआ,
स्मरण के ध्यान से क्या स्मरण का संग स्फुरित हुआ !

हृदय उसके संग में तल्लीन हो खेलता रहेगा जागकर,
हृदय में से उद्देश्य का स्फुरण ध्यान में जगमगाया।

हृदय की प्रतीति द्वारा फलित होने के उद्देश्य से दिल में,
हृदय अग्नि ने भभक कर मुझे स्वाहा कर दिया उसमें,
जीवन के ध्येय के ध्यान में, मनन चिंतन सतत गहरा,
होकर के जहाँ, विषय में दिल क्या एकाकार शरण में जो !

स्मरण के भी अलग-अलग सोपान हैं, अलग-अलग भूमिकाएँ है और उनमें स्मरण भी अलग-अलग प्रकार का होता है। स्मरण की अखण्डता जागने के पश्चात् ही भावना का प्रदेश प्रारंभ होता है और भावना की अखण्डता जागने पर ही भावना उसके सर्वोत्तम शिखर की चरमसीमा में प्रवेश करती है, तब रूपान्तर की सचेनात्मक प्रक्रिया का प्रारंभ हो जाता है और भगवान के अनुभव प्रदेश का छोर वहीं से प्रारंभ होता है। चेतन के अलग-अलग अनुभव भी ऐसी दशा में ही प्राप्त होते हैं।

स्मरण, यह तो मेरे जीवन की ठोस नींव है। स्मरण से ही 'यह जीव' सशक्तता का अनुभव करता है। स्मरण से ही मुझे सावधानी मिली। स्मरण में से ही मुझे जीवन के उद्देश्य का ज्ञान हुआ। जीवनविकास के मार्ग में मात्र ऊपरी तौर पर बौद्धिक समझ जरा भी काम नहीं दे पाती। हृदय की एकाग्रता की गहराई से जिस भाव की लय निकलती है वही जीवन का निर्माण कर पाती है। निर्माण के लिए वही एकमात्र योग्य साधन है। भाव जागे बिना और वह भी जीवन्त अखण्ड हुए बिना जीवन कभी निर्मित नहीं हो पाता।

स्मरण करते हुए स्मरण में आगे बढ़ते हुए तथा उसी स्मरण में भावनापूर्वक, भक्तिपूर्वक आगे बढ़ते हैं, तब उसमें से आत्मश्रद्धा जागती है। तभी ऐसी आत्मश्रद्धा जीवन का ठोस आधार बन जाती है। जीवनविकास के मार्ग पर यदि चलना ही हो तो श्रद्धा अनिवार्य है; वही श्रद्धा जब तपस्या में से अंकुरित होती, किसी साधना के निरन्तर अभ्यास से या उसी प्रकार की साधना में से जो श्रद्धा निष्पन्न होती है, ऐसी श्रद्धा मुझे स्मरण के अभ्यास से श्रीप्रभुकृपा से प्राप्त हुई है। स्मरण के सेवन से जीवननिर्माण हेतु मुझे उपयोगी गुण भी प्राप्त हुए। भाव तो मिला ही। साथ ही साथ आत्मविश्वास भी मिला ही। हिंमत, पौरुष, साहस, धीरज आदि गुण भी उसमें से ही प्राप्त हुए हैं। पौरुष को भी चुनौती दे ऐसे भी साधन श्रीभगवान की कृपा से हृदय में स्फुरित हुई प्रेरणा से सुलभ हुए, वह भी 'उस' की कृपा से प्राप्त करने हेतु ऊपर वर्णित गुणों की आवश्यकता तो चाहिए ही। परन्तु अकेले ऐसे गुणों से भी नहीं चल पाता। श्रीभगवान पर का स्वयं के हृदय से निरन्तर जीवन्त सेवित सक्रिय चेतनात्मक विश्वास भी साथ-साथ में उतना ही जरूरी है।

यह स्मरण जब निरन्तर जीवन्त चेतनात्मक जागा तभी हरिलीला का खेल थोड़ा थोड़ा कुछ समझ में आने लगा था। भावना से जीवन कैसे पुष्प स्वरूप में विकसित होता रहता है, उसका कुछ यत्किंचित् चित्र उभारना संभव हो सका हैं।

'हरि तेरी शक्ति के आधार पर तिनका पहाड़ चढ़ता है,
सातों समुद्रों को कैसे तैरकर पार करता वह!'

श्रीभगवान की कृपाशक्ति से 'इस जीव' के द्वारा क्या-क्या और कैसे-कैसे हो सका है, इसका वर्णन करने का यह स्थान नहीं है। स्मरण का एकाग्रचित्त से सतत अभ्यास द्वारा भक्ति जागती है और भक्ति के निरन्तर हृदय सेवन से भाव की जो सर्वोत्कृष्ट चरमसीमा पैदा होती है और उसके आधार पर मनादिकरण हरिलीला के अनुभव की पात्रता पाते हैं और उस भूमिका के अनुभव का यद्यपि ऐसा वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता तब भी मेरे जैसे मूर्ख का उसमें नहींवत् चंचुपात है।

'समर्थों से भी श्रेष्ठ हो जाये, समर्थ श्रेष्ठ ऐसा हैं,
हरि समान कोई श्रेष्ठ संपूर्ण ब्रह्माण्ड में नहीं है।'

हरि के भक्त को जीवन में ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव होता है और हरि के रस में ही सभी का मूल तत्त्व समाविष्ट है, ऐसा उनका जीवन्त प्रत्यक्ष अनुभव है। हृदय की धड़कन भी हरि, सर्वत्र हरि के चरण की विस्तारलीला है, फिर केन्द्र में भी वे स्वयं केन्द्र के मध्यबिन्दु में भी वे हैं ही। ऐसी सारी हरिलीला अनुभव करने में उनके भक्त को तरंग पर तरंगें उछलती जाती हैं।

'अणु फूटे बिना शक्ति का अनुभव आता नहीं हैं,
अणु को फोड़ने की रीत सचमुच साधना क्या वह!'

साधना अर्थात् क्या ? उसकी समझ ऊपर की पंक्ति में उसकी समग्रता में समा गयी है। जैसे अणु को फोड़े बिना उसकी शक्ति का अनुभव नहीं होता। अणु की शक्ति का अनुभव होता है उस शक्ति को फोड़ने के पश्चात्। तब उस शक्ति के द्वारा ही असंभव लगनेवाले बड़े से बड़े कर्म हो सकते हैं। नये प्रकार के मौलिक सर्जन भी उसके आधार पर ही होते हैं। ऐसी साधना 'इस जीव' द्वारा प्रभुकृपा से हुई है।

'भूमिका भाव की जब हृदय में संपूर्ण व्यक्त होती है,
शरीर के ही क्या पलट जाते सभी गुण-धर्म जो कुछ हैं।'

ऐसी साधना के भाव में से जब सचमुच का आनंद प्राप्त होता है, तब इसप्रकार का आनंद उस आनंद के प्रकार के जीवन में हर किसी को जीवन प्रदान करता है। आनंद के भी भिन्न-भिन्न प्रकार हैं, भिन्न-भिन्न भूमिकाएँ हैं और अलग-अलग दिव्य देश भी हैं। ये सारी अनुभव की समझ साधना में से पैदा हुई और रस के कारण मुझ में जागृत हुई है।

'अणु को फोड़ना सरल नहीं किसी प्रकार भी,
कितनी सारी प्रक्रियाओं से गुजरना वहाँ पड़ता हैं।'

इसप्रकार मेरे जीवन में घटित हुआ है। ऐसी शक्ति प्राप्तकर उसका अनुभव लेने हेतु संकट, विघ्न, उलझन, कठिनाई, पश्चाताप, संघर्ष ऐसे अनेक प्रकार के अवरोधों की भूमिका जब पैदा हुई थी, तब श्रीप्रभुकृपा से उसका सामना करने के लिए दिल में कितनी चेतनात्मक छटपटाहट, तत्परता, उतावली, तमन्ना आदि थे।

('जीवनतप' की प्रस्तावना में से)

यह स्मरण का प्रयोग मैंने भगवान की कृपा से प्रयोगात्मक रूप से भी चलाया है। आध्यात्मिक मार्ग के विकास के लिए दूसरे ऐसे साधकों में चित्तशुद्धि, प्राणशुद्धि और अहंशुद्धि—यह सभी चाहिए। ऐसी शुद्धि पैदा हुए बिना योग हो ही नहीं सकता। योग के लिए शुद्धि अनिवार्य है, ज्ञानमार्ग के लिए भी। पापी से भी पापी और अधमाधम ऐसे निम्न से भी निम्न गति के जीव भगवान का स्मरण करके इस भवसागर से पार हो गये हैं ऐसे ऐतिहासिक उदाहरण भी हैं। इस युग में (जिसे मैं प्रपंचकाल कहता हूँ) भगवान का स्मरण ही एक उत्तम से उत्तम पार होने का साधन है और उस प्रयोग साधन द्वारा श्रीभगवान की कृपा से 'इस जीव' द्वारा सिद्ध हुआ है।

रास्ते पर आते-आते भगवान का स्मरण, भजन, कीर्तन, ध्यान, त्राटक आदि साधन 'यह जीव' किया करता था और वह भी गुजरात के सेवाक्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के सेवाकार्य प्रभुप्रीत्यर्थ किया करता। इस यथार्थ की जानकारी बहुत से लोग जानते हैं।

लाखों गुना प्रमाण भले ही दें, परन्तु जब तक 'जीव' को भगवान के प्रति गतिशील, क्रियाशील ऐसी अदम्य ज्वालामुखी की अग्नि के समान हृदय में हृदय से जिज्ञासा प्रगट नहीं होती, तब तक वह कुछ नहीं कर सकता हैं और आगे भी नहीं बढ़ सकता। थोड़ी बहुत भी जिसमें जिज्ञासा है, ऐसा जीव उसकी प्रकृति और स्वभाव को अनुकूल हो सके ऐसा कोई साधन लेकर, उसे सतत लगातार लीन रहते हुए, उसमें ही लगा रहे, जुटा रहे और परिश्रम करता रहे तो वैसे 'जीव' में प्राण का उन्मेष हो सकता है। डूबे बिना इस मार्ग में या दूसरे किसी मार्ग में विकास का कार्य नहीं हो सकता।

('जीवनस्पन्दन', प्रस्तावना से)

■ चेतनात्मक नशा

प्रवर्तमान काल में कितने ही प्रतिष्ठित विचारक ऐसे स्मरण को कुछ थोड़े बहुत मात्रा में अवगणना करते हों ऐसा कुछ लगता है । कितने ही तो इसे L.S.D. के साथ भी तुलना करते हैं । श्रीभगवान का नाम ले लेकर अनेक संतभक्त हमारे देश में हो चुके हैं और संसार से तर गये हैं । ऐसे भक्त प्रत्येक देश में हुए हैं । ऐसे नाम काल्पनिक भी नहीं है । ऐसे भक्त प्रभुभक्ति में रंगे हुए और प्रतिष्ठित हुए हैं । श्रीभगवान के नामस्मरण की भक्ति में जिस-जिसने गहरे से गहरा अवगाहन किया है और प्रेमभक्तिज्ञानपूर्वक सर्वप्रकार से और पूर्णभाव से जीवन को समर्पित कर श्रीहरिभक्ति में प्रयोगात्मक ढंग से लगातार सतत अनुभव लीन हुए हैं, उनके दिल स्मरण द्वारा सांसारिक मोहग्रस्त भूमिका में से जीवन को तारनेवाला एक बड़े से बड़ा अमोघ साधन है ।

स्मरण में भक्ति का भाव पैदा होने पर उसमें एक प्रकार का चेतनात्मक नशा अवश्य है । कोई स्थूल प्रकार का नशा कदाचित् उसे उत्तेजित कर सके और बुद्धि में भी चमक लाये, तब भी मनादिकरण में स्थूल नशा से पैदा हुई चमक जीवन की ऊर्ध्व से ऊर्ध्व भूमिका में जीवन की प्राकृतिक भूमिका से मुक्त, ऐसे किसी अगोचर, अगम्य अवर्णनीय दिव्य देश में अनुभवगम्य ऐसी उत्तरोत्तर ऊर्ध्वगामी भूमिका में ले जाने के लिए जरा भी कामयाब नहीं हो सकता । यह हकीकत निश्चित है ।

स्मरण तो जीवन को अनुभव के ऊर्ध्वप्रदेश में ले जाने का साधन है । जबकि स्थूल नशा पैदा करनेवाली वस्तु भले ही नशा लाये या प्रेरित करे और नशा के समय उसमें उत्तेजना भी ला सकती है ।

परन्तु यह सब निपटने के बाद तो ऐसा जीव संपूर्णरूप से तामस में ही पड़ेगा, यह भी निर्विवाद सच है। जबकि स्मरण में ऐसा नहीं है।

जीवन में स्मरण की अखण्डाकार भावना प्रवर्तित होते ही 'जीव' की दशा कैसी-कैसी होती है, उसे मैंने यथार्थ रूप में व्यक्त किया है।

स्मरण की भावना बढ़ते-बढ़ते और उस स्मरण में चेतन भाव पैदा होने पर जीवन के ऐसे प्रयोगवीर का चरणरज की रज हुए बिना यह जीवनविकास के मार्ग में आगे नहीं बढ़ सकता—ऐसा उसे प्रत्यक्ष दिल में लगने लगता है, तब उसमें नम्र से नम्र होने की पर्याप्त सजगता आती है। ऐसी सचमुच उत्कट आवश्यकता की सजगता जीवनविकास के श्रेयार्थी को नम्र से नम्र होने की उसके हृदय में छटपटी जगाती हैं, चेतनात्मक तत्परता लाती हैं। वह नम्र से नम्र होने के लिए उसके दिल की गहराई और चेतनात्मक सभानता—जो ज्ञानभक्तिपूर्वक उसमें चेतनारूप में निष्पन्न हुई है, वह उसके जीवन में जब रोम-रोम में विद्यमान है, तब उसके जीवन में कोई दिव्य, रम्य और भव्य जो एक समर्पण भावना जाग जाती है, वैसी उसके जीवन में से व्यक्त हुई बलिहारी और वैसे जीवन के ऊर्ध्वप्रदेश के अनुभव में से पैदा हुई सुगंध वह उसमें व्यक्त होये बिना नहीं रह सकती।

('जीवनरसायन' की प्रस्तावना से)

॥ हरिःॐ ॥

३. शब्द की शक्ति

■ शब्द का मूल

स्वजन : मोटा, शब्द की उपासना अथवा मूल रूप में शब्द था या विचार था ? इसी से सारी सृष्टि हुई ?

श्रीमोटा : हम मनुष्य हैं, इसलिए मनुष्य के ढंग से ही हम विचार कर सकते हैं। क्योंकि हमारी बुद्धि आगे-पीछे का वातावरण—यह है वह है—आगे-पीछे हम जो कुछ देखते हैं, करते हैं उतना ही समझते हैं । जितना लिखा गया है इतना ही हमारी समझ में आया है। हमने सुना है उस अनुसार हम विचार कर सकते हैं। उसके बाहर तो हम विचार नहीं कर पाते । यह संभावना नहीं है । इसलिए हम लोगों ने विचार किया कि जो कुछ भी होता है, वह शब्द द्वारा होता है। यह सब हमने अनुभव द्वारा देखा। 'यह कर। वह कर। फ़लाना करो। अमुक करो।' इस प्रकार जो कुछ करवाना होता है, जो कुछ रूप देना होता है, सर्जन करना होता है, व्यापार है, प्रगति है, संसार की प्रगति है या अन्य कुछ है, यह सब मात्र कहने से—शब्द से—होता है । इसे तो हम देखते है । फिर इन लोगों ने सोचा कि यह सभी ब्रह्माण्ड मात्र शब्द से ही हुआ है । फिर हमने मूल खोजा । पर मूल खोजने भी हम किस तरह जाते हैं ? मनुष्य स्वरूप में अपनी मानसिक परिस्थिति—जो कुछ हमारी प्रगति है यह शब्द की ताकात है। यह निराकार है। निराकार किस तरह ? हम बोलते हैं, यह तो साकार है। ऐसा समझ में आया इसलिए साकार हुआ । पर जब शब्द ही नहीं

होता। हम बोलते ही नहीं। मौन रहते हैं तब वह निराकार होता है, तब भी उसका स्थान है। हमारे संस्कार में, हमारे मनादिकरण में, हमारे दिमाग में उसका स्थान है। इसे हम मना नहीं कर सकते। इसलिए निराकार होने पर भी उसका अस्तित्व है। इसे हमें स्वीकार करते हैं कि यह है अवश्य ! शब्द बोला न जाता हो तब भी वह निराकार होते हुए भी उसका अस्तित्व है।

शिखर पर से इस शब्द द्वारा सब कुछ हुआ और यह होते हुए भी उसका अस्तित्व है। उसी प्रकार ब्रह्म के विषय में, भगवान के विषय में वे निराकार होने पर भी उनका अस्तित्व है और निराकार से ही वह साकार—शब्द रूप में हुआ। अर्थात् हम सकल जो कुछ भी प्रवृत्ति करते हैं, जो करनी पड़ती है अथवा तो जो होनेवाली है, वह भी शब्द द्वारा ही होती है, यह हमारी समझ में आता है, क्योंकि इसी ढंग से सारा वातावरण हो, हमारी समझ, हमारी ग्राह्य (भूमिका) हो, हमारी जो कुछ भी विकसित हुई शक्ति हो उसे इसप्रकार से ही हम समझनेवाले हैं। दूसरे अन्य ढंग से हम नहीं समझ सकते। इसीलिए हमारे शास्त्रकारों ने, अनुभव करने वालों ने इस शब्द को इस ढंग से स्वीकार किया। शब्द से ही यह सब कुछ होता है। इसे अनुभव द्वारा भी उन्होंने ऐसा ही देखा।

शब्द का स्वरूप प्रत्येक भूमिका में अलग अलग होता है। जैसे संगीत है। उस संगीत के शब्द का लय प्रारंभ में भिन्न होता है। अमुक आरोह-अवरोह हो तब उसका लय अलग प्रकार का और जब एकदम ऊपर ले जाते हैं, तब भी अलग प्रकार का। जैसे संगीत में शब्द का राग होते हैं वैसे ही राग की भूमिका में उसका स्वरूप अलग-अलग होता है। उसके सरगम भी उसकी भूमिका अनुसार अलग होते हैं।

चेतन का अवतरण अलग-अलग भूमिका में हुआ, तब वह अलग-अलग रूपों में हुआ। क्योंकि चेतन का गुणधर्म जहाँ मिलता है, वहीं एकरूप हो जाता है। इसलिए वह उस रूप हुआ। यदि चेतन का गुणधर्म तादात्म्य न होनेवाला हो तो उसका वह रूप नहीं हुआ हो। जिस-जिसमें एकाकार हो जाय वही रूप हो जाता है और फिर वापिस स्वयं भिन्न रहता है। उसी तरह शब्द भी जिस जिस भूमिका में व्यक्त हुआ उस-उस भूमिका का प्रभाव उसमें उसीप्रकार व्यक्त होता है। अर्थात् काम-क्रोधादि रूप में शब्द व्यक्त हुआ हो उस उस प्रकार की गति में हमें देखने को मिलता है। यदि लोभ की भूमिका से व्यक्त हुआ हो तो तृष्णा की भूमिका में ले जाता है। इस ढंग से आध्यात्मिक उच्च स्तर में जो शब्द व्यक्त हुआ वह उसी में उसकी गति कराएगा, उस प्रकार की सभानता और उस प्रकार का ज्ञान उसे होगा ऐसा हमारी समझ में आ रहा है। *('जन्म-पुनर्जन्म' आवृत्ति प्रथम, पृ. ७० से ७३)*

■ सभी उपासनाओं में शब्द

प्रत्येक चेतनानिष्ठ के लिए उपासना करनी आवश्यक है। उपासना में किसी न किसी गूढ़ रूप से शब्द तो आ ही जाता है। शब्द की अनंत लीला है। प्रकृति क्षेत्र में भी अनंत लीला है। कामक्रोधादि में भी उसकी लीला है। 'शब्द' के साथ में रहकर 'शब्द' का वर्णन करते जाना यानी गूढ़ से गूढ़ प्रदेश में उतरना। व्यक्त हुए प्रत्येक शब्द का अखण्ड, निरवयव, अनिर्वाच्य ऐसे 'शब्द' के साथ संबंध है। शब्द का कुंडलिनी की जागृति के साथ भी संबंध है ही। अभी एक ढंग से सभी की कुंडलिनी जागृत है ही। परन्तु उसकी निम्न गति है। वह प्रकृति के बहाव में बहती है। ऊर्ध्व मनन-चिंतन हो, तो उस अनुसार प्रवाहित होने लगेगी।

'शब्द' के कारण प्राण है। प्राण के कारण 'शब्द' नहीं है। शब्द में एकाकार अखण्डाकार वृत्ति हो जाय तब तो शब्द होगा वह अलग होगा। तब सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। प्रकृति में व्याप्त होते हुए भी अखण्डाकार में व्याप्त होता रहता है। अतः वह सर्वत्र है। निम्न से निम्न गति में 'स्वयं अखण्ड है', 'मैं ही हूँ', 'कहीं भी भिन्नता नहीं है' ऐसी प्रतीति उसे तभी होती है।

शब्द की तरंगों द्वारा आधार★ परिपक्व होता जाता हैं। ह्रीं क्लीं– आदि एकाक्षरी बीजमंत्र तंत्र में खोजे गये उसके पीछे ऐसा ही दृष्टिबिन्दु था कि कोई भी शब्द खोजें कि जिससे स्वरूप प्राप्ति आदि का काल कम किया जा सके। उसमें भी दो भाग हैं। कृष्णगति और शुक्लगति। **शब्द के मात्र उच्चारण से ज्ञानतंतु के भाव में परिपक्वता हो तो प्रकृति की स्थिति होने पर भी साक्षीभाव से एकाकार, अखण्डाकार रह सकते हैं।** इसमें श्रद्धा–मानें या न मानें इसका कोई संबंध नहीं है। तात्पर्य इतना है कि मात्र उच्चारण से कार्यसिद्धि होती है। शरीर में भी विरोध के तत्त्वों के बीच अखण्डता बनती है, तब सही अखण्डता कही जाती है।

'शब्द' की भी अलग–अलग भूमिकाएँ हैं। ग्यारहवीं भूमिका के बाद 'शब्द' का नाद सुनाई देता है। नाद एकदम समाधि तक ले जाता है। कभी पक्षी का, कभी बछड़ा रंभाता हो, ऐसा नाद सुनायी देता है। नाद ऐसा लगता है पर ऐसा होता नहीं। यह है शब्द की लीला।

('श्रीसद्‌गुरु' आवृत्ति–१, प्रस्तावना, पृ. ३२–३३)

(अनुष्टुप)

आकाश से है शब्द, सर्जित हुआ शब्द से सभी।
शब्द से हैं प्राण उसीसे सर्जित हुआ है जीवन।

★ अंतःकरण — मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहं।

नाभि का शब्द क्या स्वयं ज्ञानात्मक न पूर्ण है ।
फिर साथ ही साथ अज्ञानात्मक वह नहीं है ।
शब्द का वह परिणाम नाद प्रत्यक्ष मानना ।
नाद एकाग्रता कैसी अंतर में लाएगा ।
नाद और नाद में लीन मनादि मग्न होते हैं ।
तथापि उस नाद नहीं ज्ञान, नाद और ज्ञान भिन्न है ।
प्रत्येक भूमिका की तरह शब्द का नाद कैसा अलग !
प्रत्येक नाद के वापिस गुण और भाव हैं अलग ।
अलग-अलग भूमिका के शब्द के भी प्रकार हैं ।
वे भी शब्द द्वारा नाद के भिन्न प्रकार हैं ।
नाद का मुग्ध संगीत कैसा भारी दलदल वह ।
रखें डुबाकर मात्र उसीमें एकदम तल्लीन होकर ।
कितने ही प्रकार हैं चेतनानिष्ठ में भरे !
व्यवहार में वे अलग-अलग भाव में वे एक !
स्वभाव में पूर्णतः अलग सभी तो भी क्या तत्त्व में एक !
व्यक्त होने में अलग अलग, तभी भी चेतन है एक ।
साधना भले ही अलग-अलग की हों उन्होंने ।
किन्तु वहाँ परिणाम तो होनेवाला एक ही है ।
स्वभाव से सबके अपने, उसी अनुरुप साधना ।
अलग अलग रहेंगी, न उसमें एकरूपता ।
कोई साधना कठिन तपस्या माँगती ।
कोई सरल-सीधी जैसे नामजपादि है ।
सभी करणों की शुद्धि माँग ले कोई साधना ।
जबकि सभी साध सकते नाम की साधना ।

कोई साधना समय को भी संक्षिप्त कर डालती ।
किन्तु शुद्धि अनिवार्य, वहाँ अति जरूरी है ।
लेते लेते ही जब 'नाम' शुद्धि हो जाती ।
जागते वहाँ अनुराग, लगनी बढ़ती जाती;
सभी साधनों में है श्रेष्ठ 'नाम' की साधना,
अनुभव कर के ही गाया है, जीवन में सदा आचरण कर के ।

('श्रीसद्गुरु' आवृत्ति-१, पृ. २०२, २०३)

■ शब्दशक्ति–वैज्ञानिक सत्य

आजकल अनेक बुद्धिशाली लोग कहते हैं कि भगवान का नाम लेने से क्या होता है ? दूसरे विज्ञान की तरह यह शुद्ध वैज्ञानिक सत्य नहीं है । पर हम कहते हैं कि यह वैज्ञानिक सत्य है ।

हमारे ब्रह्माण्ड में पाँच तत्त्व है–आकाश, तेज, वायु, जल और पृथ्वी । कितनों में ही मात्र तेज का ही तत्त्व होगा ऐसे अनेक हैं । तो कितनों में ही आकाश, तेज और वायुवाले हैं । इसीतरह आकाश, तेज, वायु और जलवाले थोड़े हैं किन्तु हमारी पृथ्वी पर पाँचों ही तत्त्व विद्यमान हैं । इन पाँचो तत्त्वों से जो व्यक्त (Menifest) होता है, वह यहीं है । उनमें आकाश का व्यक्तव्य शब्द, तेज का व्यक्तव्य रूप, वायु का व्यक्तव्य स्पर्श, जल का व्यक्तव्य रस और पृथ्वी का व्यक्तव्य गंध है । जो शब्द है, वह भाववाचक है । पहला जो मूल शब्द है, वह बहुत आकर्षक है । बालक पहले 'माँ' बोलता है । वह उसे बहुत आकर्षक लगता है । वह नौ महीने तक माँ के पेट में रहता है, इसलिए माँ के साथ उसका आकर्षण बहुत होता है । पहले जो मानव रहा होगा उसका आकर्षण अज्ञात रूप से चेतन की ओर था, क्योंकि उसकी वृत्ति बहिर्मुखी न थी । भाषा का साधन था नहीं । तब सुधार की दिशा में न थे । शायद कपड़े भी न पहनते हों । इससे जिसे संस्कृति या अंतर्मुखता कहते हैं, वह उस काल में विशेष प्रमाण में रही होगी ।

पहले अंधेरा होता है और फिर प्रकाश होता है। इसीतरह पहले जो स्थिति थी, उसमें से जो संस्कृति जन्म लेती है, उससे पहले उसका प्रभाव तो होता ही है। **ऋगवेद के उस काल का कोई अध्ययन करेंगे तो किसी को भी लगेगा कि हम से अधिक वे संस्कृत थे। शायद सुधरे हुए न हों, पर अधिक संस्कृत या अंतर्मुख तो थे ही।** दुनिया की किसी भी संस्कृति से हम उस काल में श्रेष्ठ थे।

जब हम बोल नहीं पाते थे, तब शब्द का व्यक्तव्य हुआ। आज भी यदि शब्द न हो तो बहुत उलझन हो जाय।

शब्द आकाश से निकला है। यह ब्रह्मवाचक, चेतनवाचक और भाववाचक है। उसमें जब निरन्तरता, अखण्डता पैदा होती है, तब हमारा संबंध आकाशतत्त्व के साथ होता है। हमारे शरीर के पाँच तत्त्वों में से एक आकाशतत्त्व है। शब्द का संबंध आकाश के साथ है। उसका जन्म आकाश से होता है। आकाश का संबंध गुण के साथ भी होता है। गुण तीन हैं—सत्त्व, रजस और तमस। आकाश का संबंध सत्त्व के साथ होता है। जब शब्द में निरन्तरता आती है, तब आकाशतत्त्व खिलता है। तब उसका संबंध सत्त्व के साथ होता है। इस लिए सत्त्व का विस्तार होने लगता है। ऐसा होने पर हमारी जीवदशा मंद पड़ती है। इसीलिए काम, क्रोध, लोभ, तृष्णा, मद, मत्सर आदि कम होने लगते हैं। यदि हम जीवदशा की वृत्तिओं को एक के बाद एक कम करना चाहते हैं तो सारी जिंदगी बीतने पर भी उसे निर्मूल नहीं कर सकते।

इसलिए ऋषि-मुनिओं ने देखा कि यह सब मनुष्य से नहीं हो सकता। अतएव उन लोगों ने सोचा कि मनुष्य को ऐसा साधन दें कि जो सब कोई कर सके। योग, तंत्र, ध्यान आदि सभी नहीं कर

सकते। अंधे, लंगड़े, रोगी, स्त्री, पुरुष या वृद्ध सभी अपना सकें ऐसा साधन मात्र भगवान का नाम है। जब भगवान का स्मरण सहज रूप से होने लगता है – जिस तरह स्वयं श्वास–उच्छवास चलता है, रक्त बहता है, उसी तरह effortless effort से बिना प्रयत्न के प्रयत्न से, सहजता से जागृतिपूर्वक स्मरण होने लग जाँय, तब हम में शुद्धि आने लगती है। हम श्वास लेते हैं उसका जागृतिपूर्वक का ज्ञान नहीं होता । क्योंकि वह सहजक्रिया है। पर अजपाजप की क्रिया में ऐसा नहीं है। हमारे में जो पुरुष सुषुप्त है, वह पुरुष अजपाजप होने से जाग्रत होने से consciousness—सभानता आती है। हम में रहा हुआ जीता-जागता विवेक जाग उठता है। सामान्य जीवदशा का विवेक नहीं, पर सजग विवेक तत्काल निर्णय ले सकता है, अयोग्य का निवारण कर योग्य का स्वीकार करता है। यानी कि शब्द की साधना से इस स्थिति को पाया जा सकता है, और यह संपूर्ण वैज्ञानिक है। यह कोई गँवारू बात नहीं, पर अनुभव का सच है।

हम प्रकृतिरूप हैं, किन्तु यदि हम साक्षी बन जाँय तो हमें भोगने का भाव बंधनरूप न लगेगा। प्रकृति से अलग होना हो तो क्या करें ? हम तो प्रकृति में गले तक डूबे हुए हैं फिर यह किस तरह से होगा ? इसका साधन शब्द है। जब हमारा अनुसंधान शब्द में होता है, तब वह शब्द हमारे चित्त में अलगाव लाता हैं। धीरे-धीरे अलगाव सतेज होने से विवेक जाग्रत होता है और तत्काल निर्णय ले सकें ऐसी शक्ति आ जाती है। *('मौनमंदिर में प्रभु', पृ. २० से २६)*

॥ हरिःॐ ॥

॥ हरिःॐ ॥

४. नामस्मरण :
वैज्ञानिक अभिगम और पृथक्करण

■ समर्पण के प्रयोग

जैसे H_2O के प्रयोगसिद्ध यथार्थ को सभी लोग सत्य के रूप में स्वीकार करते हैं, उसी तरह अनेक देशों के, अनेक धर्मों के, अनेक संस्कृतियों के अलग-अलग मनुष्यों ने प्रयोग कर बलिदान की भावना से न्योछावर होकर, सभी तरह से और सर्व भाव से समर्पण में तदाकार हो जाकर जिस सत्य को अनुभव किया, जीवन में समा लिया और उसकी शक्ति द्वारा जीवन जिया। उस समाज के इतरजनों को भी उनकी ऐसी असर से प्रभावित कर, जीवन की नयी राह दिखाने में और नयी राह चलाने में वे प्रत्यक्ष क्रियाशील एवं सर्जनशील बने हैं। यह भी एक ऐतिहासिक सत्य है। ऐसे महानुभावों के जीवन के उस-उस काल में उनके जीवन की प्रेमभक्ति और ज्ञानपूर्वक समर्पण के प्रयोग संपूर्ण वैज्ञानिक नहीं है ? विज्ञान ने जिसप्रकार प्रयोग कर-कर जगत को प्रत्यक्ष सत्य सिद्ध कर बतलाया है। उसी तरह जीवन का नवनीत निष्कर्ष रूप में निकाल-निकालकर महानुभावों ने अपने जीवन के प्रत्यक्ष अनुभवदर्शन करवाये हैं। ऐसे प्रत्यक्ष ज्ञानभक्तिभाव द्वारा व्युत्पन्नजीवन क्या प्रयोग नहीं हैं ?

ऐसे लोग तो जीवन में जीवन से परिवर्तत हुए हैं, यह तो प्रत्यक्ष सत्य है। इतना ही नहीं किन्तु ऐसे लोगों के जीवन के प्रभाव से दूसरे लोगों के जीवन परिवर्तित हुए हैं, ऐसा प्रभाव उन्होंने पैदा किया है।

अनेक नकारात्मक भाववाले 'जीव' को भी उन आत्माओं ने नया पलटा देने में अनोखा वेग दिया है, यह भी ऐतिहासिक है।

■ प्रभु का स्मरण—व्याख्या और प्रक्रिया

प्रभु का स्मरण अर्थात् भावात्मक जप द्वारा जीवन को परिवर्तित करने की एक प्रकार की सूक्ष्म प्रक्रिया। सचमुच इसमें श्रद्धा की आवश्यकता पड़ती है। पर जिनमें न हो उनमें भी वे पैदाकर सकते हैं। कोई तर्क करे कि जप से कामक्रोधादि कैसे कम हो सकते हैं ? इसका उत्तर यह है कि यदि कोई उसमें समर्पणभाव से न्योछावर हो और जप में प्रेमभक्ति की निष्ठा यदि सजग रूप से कर सके तो उसका पता अवश्य ही हो जाएगा, ऐसा सत्य कितनी ही बार ज्ञात हुआ है।

पाँच तत्त्व और उनकी तन्मात्रा निम्नलिखित है—

तत्त्व		**तन्मात्रा**
आकाश	–	शब्द
वायु	–	स्पर्श
तेज	–	रूप
जल	–	रस
पृथ्वी	–	गंध

इन पाँचों तत्त्वों का तीन गुणों के साथ संबंध है —

सत्त्व का संबंध आकाश के साथ।

रजस का संबंध वायु और तेज के साथ।

तमस का संबंध जल और पृथ्वी के साथ।

शब्द और आकाश संपूर्ण रूप से परस्पर संलग्न हैं। वे परस्पर भिन्न होने पर भी एक हैं । जैसे ही प्रकाश और सूर्य, गर्मी और अग्नि।

शब्द आदि-अनादि काल से है। ऐसे चेतन के प्रतीक शब्द में जब जीवन्त निरन्तरता, अखण्डता, अटूटता आ जाती है, तब आधार★ में आकाशतत्त्व खिल उठता है, शीर्षस्थ हो जाता है । अब आकाशतत्त्वको और सत्त्वको परस्पर संबंध होने से जब आकाशतत्त्व खिलता है और अग्रिम होता है, तब आकाश के खिलने के साथ साथ सत्त्वगुण भी खिलने लगता है। सत्त्वगुण खिलने लगने से और सत्त्वगुण जीवन्त अग्रिम होने से रजस-तमस गौण बनते जाते हैं। कामक्रोधादिक विषय तो रजस और तमस गुण के आधार पर होते हैं। इसलिए जब रजस-तमस गुण मंद पड़ने लगते हैं, तब स्वयं कामक्रोधादिक कम होने लगते हैं। इसप्रकार चेतनात्मक, भाववाचक शब्द में जब जीवन्त, सहज निरन्तरता, अखण्डता और अटूटता प्रगट होती है, तब कामक्रोधादिक, रागद्वेष कम करने या निःशेष करने में श्रेय साधक को अधिक कठिनाई नहीं पड़ती। इसका मूल कारण तो यह है कि ऐसे चेतनवाचक शब्द में जब जीवन्त सहज अखण्डता आती है, तब समग्र आधार में एक ऐसे प्रकार की – A distinct kind of awareness – एक विशिष्ट सहज सभानता प्रगट होती है। इसके द्वारा उसका अपने ध्येय के प्रति विवेक इतना अधिक सजीव हो जाता है कि जिससे वह सत-असत का सही निर्णय कर सकता है। इतना ही नहीं, परन्तु ध्येय के विरुद्ध यदि कुछ भी हो उससे अलग होने में उसे देर नहीं लगती। ऐसे समय में उसका विवेक वह तो पूर्णरूप से ध्येय प्रति के दृष्टि, वृत्ति और रूखवाला जीवन्त,

---

★ अंतःकरण–मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहं।

गतिशील, क्रियाशील तथा सर्जनशील, अखण्डरूप से सभानतायुक्त, सदा चेतनामय, हर पल सहज जाग्रत रहा करता है। ऐसा जीवन्त, सहज, क्रियाशील गतिशील और सर्जनशील विवेक आने पर श्रेयसाधक की दृष्टि, वृत्ति और रूख सतत सहज रूप से हर पल ध्येय के प्रति समर्पित–सजग हो जाते हैं।

मंत्र शब्द में ऐसी जीवन्त सहज सभानता जाग्रत होने से उसमें एक ऐसे प्रकार की भावप्रेरक संनिष्ठा का उन्मेष होता है, जिससे सहज जीवन्त संनिष्ठा में से अनन्त गुने गुण और शक्ति प्रगट होती रहती है। तब गुण को विकसित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उपरोक्त संनिष्ठा का ही गुण और शक्ति परिणाम होता है।

श्रेयसाधक के आधार में ऐसी संनिष्ठा जब तक नहीं आ पाती, तब तक वैसे साधक को गुण और शक्ति प्राप्त करने की विशेष आवश्यकता होती है।

प्रभु का स्मरण हो पर यदि रागद्वेषादिक मंद न पड़ सकें हो तो ऐसे स्मरण का कोई अर्थ नहीं। यह भी उतना ही सच है। सामान्य जीव अखण्ड, जीवन्त, सातत्य रूप से प्रभुस्मरण में लगा रहे ऐसा पाना संभव नहीं है। यह तो जिस 'जीव' को Volcanic Aspiration जागते हैं, ऐसे ज्वालामुखी के समान ध्येय के प्रति उत्कट तमन्ना जब जागती है वैसे ही जीव शब्द की निरन्तरता में तन्मय हो पाते हैं। और ऐसे तो अत्यन्त लघुत्तम सर्जक लघुमति में ही (Microscopic Creative Minority) होते हैं। यों सामान्य जीव के लिए तो नामस्मरण या जप उसके जीवनविकास के लिए उत्तम से उत्तम, सरल, निर्दोष, निर्मल साधन होने पर भी ऐसे जप के साथ-साथ उसे उसमें चेतनप्राण आ सके इसके लिए रागद्वेषादिक मंद करने हेतु प्रयत्नशील रहना ही पड़ेगा। ऐसा करने पर ही जप में गति आ पाएगी।

किसी भी विषय के हार्द को पकड़ना हो तो उसमें उसे याहोम कर संपूर्णरूप से न्योछावर होना पड़ता है। संपूर्ण रूप से, संपूर्ण भाव से उसके समर्पणभाव में लीन हुए बिना उसका हार्द प्राप्त करना कभी संभव नहीं हो पाता है।

जीवन किसके लिए ? जीवन का मूलतः अर्थ क्या है ? ऐसे आन्तरिक प्रश्न जिसके हृदय में जब तक प्रत्यक्ष रूप से न जागें, ऐसे जीवों को जप में चेतनप्राण पैदा होने की संभावना बहुत कम रहती है।

शब्द में जब चेतनप्राण और भावप्रेरक जीवन्तता सहज संनिष्ठा के साथ आ जाती है, तब उसके करण—मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम् विशेष से विशेष तेजस्वी और सूक्ष्म होते जाते हैं। उन–उनके विहार के प्रदेश ध्येय की ओर ले जानेवाला कोई निराला ही होता है। ऐसी संनिष्ठा से जो चेतनप्रेरक शक्ति पैदा होती है, वैसी शक्ति द्वारा फिर साधक दैवासुर संग्राम को तलवार की धार द्वारा पूर्ण सभानता और पौरुष से खेल सकता है। इसप्रकार का श्रेयसाधक बाद में तो संग्रामवीर बन जाता है। उसकी भावना तो बाद में प्रचंड शक्ति बन गयी होती है। ऐसी भावना जब आधार में प्रगट होती है, तब ऐसी जीवन्त सहजभावना में से गुण–शक्ति का तो उन्मेष होता ही रहता है। इतना ही नहीं परन्तु कला, सौन्दर्य, व्यवस्थिति आदि आदि जैसे जीवन के प्रधान aspects स्वरूपों के प्रति भी उसकी सभानता बढ़ती जाती है। इसप्रकार वह सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् की भूमिका में ला सकता है।

प्रभुस्मरण में या उस प्रकार के जप में जब सहज निरन्तरता और सतत सातत्य पैदा हो जाता है, उसके बाद ही आधार के प्रत्येक करण

में ऊर्ध्वीकरण की एक साहजिक, सर्जनशील और क्रियाशील सतत जीवन्त प्रक्रिया का आरंभ होता है। (A spontaneous creative dynamic and continuous process begins.)

भावना प्रगट होती है, उसके भी प्रत्यक्ष लक्षण है। उसे परखा भी जा सकता है। भावना जागते ही स्वयं की सूझ, प्रत्येक कर्म में विवेकज्ञान आदि सभी उसमें पैदा हुए बिना नहीं रह पाते। भावना यह तो सभी के प्रति प्रकाश डालनेवाली, प्रत्येक के स्वरूप को पहचाननेवाली और प्रत्येक के मर्म का दर्शन करानेवाली प्रचंड शक्ति है। ऐसी भावना को जो सत्कार और स्वीकार करने का काम करता है, उन सभी का प्रेम से सत्कार और स्वीकार करती है। ऐसी भावना तो श्रेयसाधक के ज्ञान के चक्षु होते हैं। ऐसे जीवन्त सहज भावना में ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय और सुमेल जन्मता जाता है। भावना जैसे भक्तिप्रेरक कर्म और भक्ति का समन्वय और सुमेल जन्मता जाता है। भावना जैसे भक्तिप्रेरक है, उसी प्रकार ज्ञानप्रेरक भी है और कर्म से ज्ञान और भक्ति को साकार करती हैं।

भावनायुक्त शब्द की साधना से हृदय की संपूर्ण एकाग्रता आती है। हृदय की संपूर्ण एकाग्रता आये बिना ध्येय का हार्द नहीं पकड़ा जा सकता है। एकाग्रता केन्द्रित होने से वस्तु के साथ का हृदयपूर्वक तादात्म्य हो सकता है।

■ जप की पद्धति :

जप की Technique (पद्धति और गुणमाप) जप छोटे से छोटा होना चाहिए।

जप में अघोष (Hard) अक्षर नहीं होने चाहिए। जो जप बोलने में बहुत ही सरल हो वही उत्तम।

शब्द के तीन स्थान—(१) नाभि (२) कंठ (३) ब्रह्मरंध्र—इन तीनों को स्पर्श कर भेद डालें ऐसे अक्षर जिस जप के शब्द में हों वह श्रेष्ठ।

प्रत्येक श्वास के साथ अथवा नब्ज की धड़कन के साथ 'जप मंत्र' बोलना चाहिए।

जप के मंत्र में गंगा के प्रवाह जैसी सतत एक समान जीवन्त सहज निरन्तरता आये, तभी अंतःकरण और आंतरिक करणों को योग्य ध्येय के प्रति दिशा देने में वह सही मददरूप हो पाता है।

जप में निरन्तरता का आना अति आवश्यक है। उसके आगे ही चेतनद्योतक भाव अंकुरित होता है।

जप जितना भावपूर्वक, संवेदना और भावना से लिया जाय उतना ही उत्तम।

मानसिक जप उत्तम है, यह बात सही है, परन्तु प्रारंभ में सामान्यतः कोई भी मन में तो जप नहीं कर सकता है; क्योंकि मन तो संकल्प-विकल्प कर सकता है। द्वन्द्व और गुण की भूमिकावाले मन का (Function) कार्य तो संकल्प-विकल्प का ही होता है। उसके बिना वह दूसरा नहीं कर सकता। जब जप में अटूट, दृढ़ अनुरागभरा जीवन्त चेतनवंत अभ्यास होने लग जाय और उसमें सतत सहजता एवं निरन्तरता आ जाए, तभी मन में जप की धारणा आ जाती है।

अनेक प्रकार के आघात-प्रत्याघातों के कारण हमारे शरीर के ज्ञानतंतुओं में कंपन पैदा होता है। ऐसे कंपनों से शरीर में अलग-अलग संवेदन उद्‌भवित होते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, अहम् आदि की उत्कटता से अमुक प्रकार के आवेश और

आवेग पैदा होते हैं । उनके आघात–प्रत्याघातों से ज्ञानतंतुओं में अलग–अलग प्रकार के कंपन पैदा होते है । उस आधार में एक प्रकार की समानता ही संतुलनपना होता है । उसमें इसप्रकार के कंपन अव्यवस्था फैलाते हैं। अशांति, असमानता पैदा करते हैं और उससे ज्ञानतंतु की सारल्ययुक्त व्यवस्थिति का भंग होने से ज्ञानतंतुओं की कार्यक्षमता कम होती जाती है । साथ ही उनकी धारणाशक्ति कम होती जाती है । समत्व टूट जाता है, संतुलन घटता है और इसीलिए रोगादि होते हैं। जप या मंत्र लगातार निरन्तरतापूर्वक ह्रदय से लिया जा रहा हो तो ऐसे मंत्र की धारणा से ज्ञानतंतु प्राणवान (Tone-up) होते हैं । इससे ज्ञानतंतुओं में समता, शांति, संतुलन आदि आते हैं। **ऐसी शांति, संतुलितता और समता ज्ञानतंतुओं में आकर उसके शीर्ष तक पहुँचती है, तब शरीर के रोग भी वे निवारण करने की संभावना में पहुँच सकते हैं ।** जप में इसीलिए गंगा के पुनीत प्रवाह के जैसी सतत एक समान अटूट निरन्तरता का होना अति आवश्यक तथ्य है । जब जप में ऐसी भावात्मक निरन्तरता आ जाती है, तब मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहं के प्राकृतिक रुखों को और ध्येय को योग्य बनाने में प्रेरणात्मक और कार्यसाधक बनते हैं। मन के संकल्प–विकल्प घटने लग जाते हैं। चित्त में सात्त्विक प्रकार का संस्कार जन्म लेता है । प्राण की कामक्रोधादिक विषयों की स्फुरणा में अपनेआप बहुत मंदता आने लगे ऐसी स्वाभाविक भूमिका बन जाती है। बुद्धि में समत्व आकार ले लेता है, उसकी धारणा उसमें अखण्ड रूप से बनी रहती है । साथ ही, अहं जो पहले जीवदशा में द्वन्द्वादिक और गुणादिक विषयों में रुका रहा करता है, वह अब उसमें से अटककर चेतन के प्रति ज्ञानप्रेरक अभ्यास में गतिशील रहने के लिए प्रेरित रहने लगता है।

जप में श्रद्धा आवश्यक सही । यों तो प्रत्येक जो कुछ भी साकार करना हो उस विषय के कर्म को परिपूर्ण रूप से सिद्ध करने के लिए उस कर्म के प्रति श्रद्धा अनिवार्य है । श्रद्धा के बिना ऐसा हो भी नहीं सकता है ।

जप में से जन्मी श्रद्धा के प्राण से जैसा लगा उसे अक्षरदेह में रखा है । उसे पढ़ते-पढ़ते जप के प्रति कितना गहरा अभ्यास हुआ है, वह समझ आता है । इस जप पर का लेख अध्ययनपूर्ण और ज्ञानयुक्त भी है । जप से संबंधित सभी पहलुओं से विचार किया गया है । यदि जप की भावना में प्रवर्तित न हुआ होता तो शायद ऐसा सब न बना सका होता ।

जप एक अमोघ दैवी शक्ति है । जो भी उसके प्रयोग में याहोम करके न्योछावर हुआ हो तथा उसमें सभी तरह से सर्व भाव से समर्पण किया हो ऐसे प्रयोगवीर को भी समाज कदाचित् ही समझ सकता है तो अनुभव तो कैसे कर सकता है ?

('जीवनस्मरणसाधना', प्रस्तावना से)

■ ॐ विषयक :

शब्द से ब्रह्म का अनुभव कैसे हो सकता है ? संसार के व्यवहार में प्रेम, द्वेष, शत्रुता आदि पैदा होते हैं । ये शब्द से पैदा होते हैं, इस बात को सभी मानेंगे । इससे प्रेम, सहानुभूति, सद्भाव आते हैं । इससे भावना भी आती है, यह सत्य है । इसमें शब्द तीन प्रकार के हैं—(१) स्थूल (२) सूक्ष्म (३) कारण । इसका तीन में विभाजन होने से तीन प्रकार हुए । इनका एक में किस ढंग से मेल मिलाएँ ?

हजारों वर्ष पहले जब भाषा का उदय नहीं हुआ था, तब बादलों और उनकी गड़गड़ाहट को भगवान की आवाज माना जाता था। उसकी प्रार्थना वेद में है। ऐसे अनंत प्रकार के शब्द हैं। वैसे ही पृथ्वी पर वनस्पति की मौन सृष्टि है, जिसके अंदर एक खेल खेला जा रहा है। इसके कारण पृथ्वी पर जीवन निहित है और उसमें से उन लोगों ने मूल शब्द खोजा और जो प्रगट हुआ उसे ॐ कहा।

शब्द के उद्भव स्थान तीन हैं—नाभि, कंठ और मूर्धन्य। इन तीनों स्थलों में से उठता है और इन तीनों को भेदता है, ऐसा है शब्द ॐ। ॐकार में अखण्ड ब्रह्माण्ड समाहित है। केवल पृथ्वी नहीं पर समस्त नभमंडल भी इसमें समाया है ऐसा सभी अनुभविओं ने कहा है। बुद्धि से विचार करें तो भी वह उसमें समा जाती है। ऐसा ही ॐ का है। पर इसका अनुभव किया जा सकता है सही ? हाँ, पर इसके लिए सतत साधना चाहिए। वह अविरत रूप से लगातार रूप से हो तो उसका अनुभव हो सकता है। इससे काम, क्रोध आदि मंद पड़ते हैं। मेरा एक मित्र बैंग्लौर में हवाईसेना में है। उसने मुझे अभी ही कहा कि चालीस हजार फीट ऊपर विमान उड़ता है फिर वह dive (डुबकी) मारता है। उसकी आवाज की इतनी intensity (सघनता) उठती है कि उससे मकान भी टूट सकते हैं और अधिक आवाज हो तो विमान टूट जाय।

'ॐ' के उच्चारण में से जो आंदोलन होते है, वह नाभि, कंठ और मूर्धन्य–इन तीनों से पैदा होता है। हमारी रीढ़ की हड्डी के अंदर मेरुदंड है और अन्य चक्र हैं। आवाज के ये तीन स्थान बतलाए हैं। उसके ठीक साथ में रहनेवाले ज्ञानतंतु से जुड़े हुए ये चक्र हैं। अब जब ॐ के आवाज के आंदोलन उठते हैं, तब ये सारे चक्र खिलने लगते हैं।

चेतन के दो पहलू है—निराकार और साकार। उसी तरह 'ॐ' कार में तीन अक्षर अ, उ, म् होने पर भी नहीं है। ॐ बोलने से मात्र भावना नहीं जागती, पर जो जीव भावना लाने के लिए एक साधन के रूप में उपयोग करता है, उसे उसमें यह मददरूप होता है। अति लम्बे समय 'ॐ' का उच्चारण सतत रहा करता हैं तो ऐसे उच्चारण से करोड़रज्जु में जो आंदोलन फैलते हैं, उससे चक्र विकसित होते हैं और उससे समता आती है।

साधु लोग कहते हैं, गृहस्थी को ॐकार का उच्चारण नहीं करना चाहिए। इसलिए मैंने तो प्रयोग किया था कि इससे क्या होता है ? मैंने अमुक पुरश्चरण करने के लिए ऐसा निश्चित किया था। एक पुरश्चरण अर्थात् चौबीस लाख जप। इससे मुझे कोई हानि नहीं हुई। जप के प्रत्येक शब्द के साथ ॐ हो तो वह मधुर हो जाता है। **संन्यासिओं के लिए ही ॐ का रटन है, यह बात गलत है।** ॐ का उच्चारण सरल है।

ॐ के लगातार उच्चारण से समता आती है, रागद्वेष घटता है तथा द्वन्द्व एवं गुण की पकड़ कम होती है। इसप्रकार द्वन्द्व और गुण कम होने से स्वयं कामक्रोध आदि कम होने लगते हैं। उनका कम होना अर्थात् प्रकृति द्वारा हम जो धक्के खाते थे उसके बदले कोई दूसरा फोर्स (बल) हमारे पास काम करवाता है—द्वन्द्व और गुण हमें कर्म में नहीं धकेलते हैं। पर हम में जो चेतन है, वह हमें धकेलता है। प्रकृति मंद पड़ने से हम में जो पुरुष है, वह जाग्रत होता है। जिससे वैसा होने से हम प्रकृति से संचालित नहीं होते। द्वन्द्व और गुण में प्रकृति से काम लेते हैं, वहाँ तक चेतन अथवा पुरुष सुषुप्त रहता है, पर प्रकृति के हट जाने से चेतन के बल से हम में कर्म अवतरित होते हैं।

ॐ में जो तीन अक्षर है—अ, उ, म् उसके उच्चारण तीन हैं। वहाँ तीन लोकों का बास है। किसी को लगेगा कि गप है। पर वह अनुभव से पता चलता है। 'पिण्ड में जो है, वही ब्रह्माण्ड में हैं, ऐसी कहावत है। जो खेल पूरे ब्रह्माण्ड में खेला जा रहा है, वही हमारे शरीर में हो रहा है। इस शरीर में अणुपरमाणु की रचना है, उसी तरह ब्रह्माण्ड भी है। यह अणुपरमाणु फूटते हैं इससे शरीर की शक्ति–ऊष्मा बनी रहती है। हमारे शरीर में अमुक प्रमाण में ऊष्मा बनी रहे तो खुराक भी पचता है। ये तीन स्थल तीन लोकों के प्रतीक है। In the begining there was a word. यह positive (विधायक) स्थिति है। यह भावात्मक है। इसमें से जब menifestation स्फोट हुआ, तब शब्द हुआ। बालक जन्म के बाद नहीं रोता है, तो घबरा जाते हैं, वैसे ही मलत्याग न करे तो घबरा जाते हैं। **शब्द के पूर्व की स्थिति शून्यावकाश है। मलरूप जो वृत्तियाँ हैं, उसका त्याग करना पड़ता है। इसलिए जीना हो तो शब्द की उपासना करनी चाहिए और काम, क्रोध, लोभ आदि का त्याग करना चाहिए।**

शब्द के पहले की स्थिति शून्यावस्था है जो भावात्मक है। उस शून्यावस्था में ॐ का अस्तित्व है पर सूक्ष्म स्वरूप में है। जबकि शब्द पैदा होता है, तब वह साकाररूप में होता है।

जीवन में चेतन का अनुभव करने के लिए शब्द की उपासना की आवश्यकता है। यह सब जानने पर आनंद होता है पर इसकी आराधना करनी कठिन है। शब्द के ऐसे तो तीन मूल हैं। पर आगे जाते वे किसी को एक, दो या तीनों में से पैदा होता है, इन तीनों करणों का हमें ख्याल नहीं होता। नाभि और मूर्धन्य में से जागता है तो इससे लाभ होता है। प्रयोग के लिए शब्द नाभि से उठाओ और देखो

कि तुम्हारे मानस की स्थिति कैसी होती है। उसकी बुलंद गूँज तुममें उन्मीलन कर डालेगी, एकाग्र कर देगी। प्रयोग कर देखो किसी भी उलझन में ऐसी ही आवाज बहुत मददरूप होती है। इसीतरह कंठ और मूर्धन्य से उठती आवाज का भी प्रभाव होता है। करके देखो, तो पता चलेगा। *('मौनमंदिर में प्रभु', पृ.३९ से ४८ संकलन)*

■ ॐ का उच्चारण :

ॐ का उच्चारण इसप्रकार होता है कि नाभि एवं कंठ से निकले और ब्रह्मरंध्र को स्पर्श करे। उसमें रहे समाविष्ट अ, उ और म् तीन स्थानों का स्पर्श करते हैं। ॐ प्रतीकात्मक है। इसे हमें इसतरह समझना चाहिए। अब, उसे बोलते समय प्रत्येक को इसका ख्याल नहीं आ पाएगा। एक बार ठीक से उच्चारण ज्ञान समझ लिया अर्थात् फिर बार-बार कोई याद करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह तीन स्थानों पर होता है और श्वास जितना दीर्घ हो उतना अच्छा। पर फिर क्या होता है कि हमारा मन उस श्वास में रहता है। मुझे ऐसे ही होता था कि पहले श्वासोच्छ्‌वास के साथ जप करना चाहिए। फिर पता चला कि इससे अच्छा है कि हृदय की धड़कनों के साथ जप करें तो अधिक प्राणवान होगा। पर मन श्वासोच्छ्‌वास के साथ रहा करता है। मैंने कहा, 'यह ठीक नहीं है। निकाल दो। मुझे यह सब कुछ नहीं चाहिए। जप ही किया करें। फिर जो स्थिति होनी होगी सो होगी।'

प्रश्न सही है कि जप श्वासोच्छ्‌वास के साथ होना चाहिए। हृदय की धड़कन के साथ हो तो उत्तम। पर इसप्रकार करने से प्रारंभ के समय में हमारा मन है, वह उसमें चला जाता है। इसलिए हमें चाहिए जप चालू ही रखें। यह तीन स्थानों को स्पर्श करता है

कि नहीं उसे देखने, हम न बैठें । फिर जब उसकी निरन्तरता आ जाएगी, उस समय स्वयं ही यथायोग्य स्थिति आनेवाली ही है । क्योंकि निरन्तरता आयी कि उस निरन्तरता में चेतन व्याप्त है ही । दूसरी किसी भी वस्तु में निरन्तरता आ ही नहीं सकती । किसी समय ब्रेक (रुकावट) आ जाएगा ।

इसकी अपेक्षा एक ध्येय रखें कि यह निरन्तर कैसे हो ? निरन्तरता आते ही यथायोग्य होनेवाला ही है, यह भी निश्चित है । क्योंकि निरन्तरता में चेतन विद्यमान है । तुम मकान लेते हो तो भी कुछ वर्ष—सौ वर्ष, दो सौ वर्ष, तीन सौ वर्ष – कितने वर्ष ? चाहे कुछ भी कोई भी लो तो भी उसमें ब्रेक (रुकावट) आये बिना नहीं रहेगा । ऐसा समझकर मैं तो लगा ही रहा । 'हरिः ॐ हरिः ॐ' चला ही करे । इसे करते ही रहो । इसलिए हमें ध्येय यह रखना चाहिए कि यह हमें करने जैसा है । यों उच्चारण से लाभ है, यह बात सत्य है । पर इसमें यदि ध्यान चला गया तो जप नहीं हो सकता ।

('अग्रता-एकाग्रता' पृ. १२०-२१)

■ नाम और नामी :

हरि से भी हरि का नाम बढ़कर है । नाम से ही नामी का परिचय होता है । पहले मात्र नाम लेने से परिचय नहीं होता । नाम जैसे-जैसे अधिक लिया जाय फिर रस का अनुभव होने लगता है । मुसलमान, ईसाई सभी में नाम प्रचलित है । हम 'राम' या 'कृष्ण' बोलते हैं, तब हमें 'राम' अर्थात् दशरथ का पुत्र अभिप्रेत नहीं है । पर चैतन्य की ऐसी पहचान (identity) है । जो शब्द से व्यक्त होनेवाला चैतन्य है । यह 'राम' जिसके द्वारा हम आकर्षित होते हैं । यही 'कृष्ण' न कि यशोदा या नंद का लड़का । हम 'राम' 'कृष्ण' बोलते हैं उसे भाव (abstract) के रूप में लेते हैं ।

जिसे दशरथ का पुत्र 'राम' या यशोदा-नंद का लड़का 'कृष्ण' ऐसा ध्वनित होता हो उचित नहीं है। उसी तरह 'अल्लाह'। ईसाई लोग क्या बोलते हैं, यह मुझे पता नहीं। पारसी भी माला रखते हैं यानी कुछ तो बोलते ही होंगे।

मूल नामी है। वह तो abstract है। नाम ही घोंटना चाहिए— ऐसा भी कुछ नहीं है। सामान्य मनुष्य का आश्रय के लिए नाम है। पर नाम का भाव जाग गया ऐसा भाव जागने पर भावसातत्य द्वारा उस नामी का परिचय हमें होता है। इसलिए नाम को बड़ा कहा है।

विशेषकर आयुर्वेदिक दवा घोंटने से जैसे उसकी शक्ति बढ़ती है, उसी तरह भगवान का नाम अधिक से अधिक घोंटा जाय, तब उसमें से फलित होनेवाली शक्ति उत्साह बढ़ाती है। मेरा अनुभव है कि भगवान का नाम लेते हुए दो—चार घण्टे हो जाँय तो उत्साह बढ़ता है। साहस, हिंमत जैसे गुणों का उदय होते हुए अनुभव किया था। प्रारंभ में तो मुझे समझ न आया। इतना सारा उत्साह क्यों रहता है ? बहुत दिनों बाद पता चला। सहनशक्ति बढ़ती है। साहस भी बढ़ता है, क्योंकि उसमें एकदम अनजाने रास्ते ही दौड़ना है। इसलिए साहस अनिवार्य है। ऐसे गुण हम में हैं ही। पर वे व्यक्त होते हैं तब पता लगता है। यह अनुभव शीघ्र होता है। यह प्रतीति होती है, तब उसमें शक्ति है ऐसा ज्ञात होता है।

संसार के व्यवहार में—सुख में—भगवान एकदम याद नहीं आते। पर किसी दुःख के प्रसंग में 'हे हरि ! हे प्रभु ! हे भगवान ! ऐसे जिस की तरफ विशेष लक्ष गया हो अथवा संस्कारगत जो हो वह नाम हमें याद आता है। कितनों को ही याद नहीं आता क्योंकि उन लोगों को ऐसी अभिरुचि नहीं होती। पर कितने चोर लुटेरों को

भी भगवान का नाम लेते हुए सुना है। भगवान का नाम लेते भगवान के भक्त हुए हैं। सूरदास जीवदशा में थे, तब वेश्या के यहाँ जाते थे। इसके लिए किस प्रकार साहस करते थे।

जैसे नाम को पूछ-पूछकर जाते हैं। जैसे कि – 'भाई ! अमुक भाई का घर कहाँ हैं ?' उसे जाननेवाला बतलाता है। नाम से मिल जाता है। भगवान का ठिकाना भी उनके नाम से मिल जाता है। उसका नाम घण्टे भर लेने से काम नहीं चलेगा। सचमुच तो निरन्तर होना चाहिए। नाम का भाव हो तो भी चलेगा। पर भाव जागता है सही, पर निरन्तरता में नहीं आ पाता है, पर नाम निरन्तर लिया जा सकता है। इससे जो भाव जागता है, वह टिका रहता है। प्रारंभ के समय में वह अधिक कम प्रमाण में होता है सही, अनुभवी होने के बाद भाव में न्यूनता नहीं आती। *('अग्रता-एकाग्रता', पृ. ६१-६२)*

॥ हरिःॐ ॥

॥ हरि:ॐ ॥

५. नामस्मरण का उद्देश्य

■ साधन का उपयोग :

नामस्मरण का उद्देश्य ज्ञानपूर्वक हृदय में हृदय से प्राणवान रहे तभी सार्थक है। अन्यथा मात्र नाम लेने या भजन-कीर्तन करने से कुछ नहीं होनेवाला। मन में मन से तो हम संसार में रमे रहते हैं और संसार के विचारों में रुचि रखें, तो ऐसा नहीं चल सकता। ऐसे अवसर पर चेतकर उससे अलग होने का प्रभुकृपा से हमें प्रयत्न करते रहना है। **या तो संसार में डूबे रहो, या तो प्रभु को भजो।** दूध और दहीं दोनों में पैर नहीं रख सकते। जो रखने जाएगा वह मार खाएगा, क्योंकि अभी हम जीवदशा में हैं। भगवान का पूर्ण भक्त दोनों में समभाव से एक रूप रह सकता है। हम यदि जीवन में जीवनविकास की भावना को और समझ को संपूर्ण यथार्थता में पैदा कर, उसकी प्रेरणा अनुसार जीने की सचमुच इच्छा रखते हों, तो जीवन में सर्वत्र जीवन के उस प्रकार के हेतु को और वह हेतु की समझ को प्रथम महत्त्व हमें देना होता है। हम प्रथम किसे महत्त्व दे रहे हैं, उसी पर से हमारी मनादि की वृत्ति समझ में आ जाती है।

नदी पार करने के लिए नाव होती है। नाव ली तो सही, पर यदि वह वहीं के वहीं घूमा करे और एक कदम भी आगे न ले जाय तो उसमें नाव का कोई दोष नहीं है। नदी के बहते पानी में यहाँ से वहाँ उचित स्थान पर नाव ले जाने के लिए योग्य उपयोग करने की कला हमें आनी ही चाहिए। इसलिए संसार में तैरते रह सकेंगे तभी संसार में

शांति मिल सकती है। तैरते रहने के लिए प्रभु के पास जीवन की भावना से डूबे रहें तो ऐसा हो सकता है। बाकी संसार में तो सारे जीव किलबिलाते हैं। *('जीवनपोकार', आवृत्ति १, पृ. ४२४-२५)*

■ स्मरण से सभानता :

सर्वप्रथम तो इस मार्ग के प्रति जिज्ञासा होनी चाहिए। फिर जिज्ञासा अधिक से अधिक चेतनात्मक प्राणवान किस ढंग से हो इसप्रकार के अभ्यास किया करें। **अब, अभ्यास यानी क्या ? जिसके द्वारा—जिस साधन द्वारा, जो करना चाहते हैं, वह हमारे लिए साकार हो ऐसी जो प्रवृत्ति और सक्रिय प्रवृत्ति।** फिर ऐसी सक्रिय प्रवृत्ति को जिसके द्वारा हम जो करना चाहते हैं, वह साकार हो सके। उस साधन का अध्ययन करें। यह अध्ययन है—जो मन, बुद्धि, चित्त, प्राण का भी स्पर्श कर सके। पर वह स्पर्श कब होगा, जिससे उसकी प्रत्यक्ष पकड़ हमें आती जाय ? तब पकड़ किससे आती जाएगी ? ऐसा शरीर से भी कर्म करते रहना पड़ेगा। ऐसा जो अध्ययन हो फिर मनादिकरण को अपनेआप स्पर्श करता है। अकेले मनादि में ही तुम रखोगे तो मात्र हवा में ही रहोगे। वह साकार नहीं हो पाएगा। इसलिए शरीर आदि से भी ऐसा कोई साधन हमें करना होगा। उदाहरण—जप करना हो तो जीभ से करें। कोई कहे, 'मन में करता हूँ।' तो यह बात गलत है। तुम्हारी गप्पें हैं। मन का प्राकृतिक गुणधर्म संकल्प-विकल्प करना है। जो संकल्प-विकल्प अपनेआप दूर नहीं हो सकते। मन में जप अपनेआप नहीं हो पाएगा। असंभव है। जब तुम्हें निरन्तर का अभ्यास हो जाय तब तुम्हें मन में धारणा रहेगी। श्वासोच्छ्वास की हमें धारणा नहीं रहेगी, सभानता नहीं रहेगी, पर उस जप की सभानता रहेगी और सभानता रहने से हम किसी में भी मिल नहीं पाते। मुझे बहुतों ने पूछा था, 'आप भगवान का स्मरण

करते हो, उसमें से यह सभानता कैसे जन्म लेती है ?' 'भाई, तुम करके देखो तब तुम्हें पता चलेगा ! मैं शिक्षित हूँ। ऐसे ही किसी चीज को मैंने नहीं माना है। पर जब अधिक से अधिक समय उसमें लगाया करें तब उसकी धारणा रहती है। उसकी awareness (जागृति) रहने से तुम किसी दूसरे में नहीं जुड़ जाते हो। शहद में मक्खी डूब जाती है, इसतरह तुम डूबते नहीं हो, यह तो मेरा अनुभव है।

('शेष-विशेष', आवृत्ति १, पृ. ९४-९५)

■ स्मरण के साथ प्रार्थना :

यदि जीवन के विकास करने का संकल्प सचमुच दिल में आया हो तो साधक को स्वयं के ध्येय मार्ग को अवरोध करनेवाला कुछ भी आये उसका त्याग कर आत्मिक बल बढ़ाना होता है। विकास के मार्ग में कुछ भी अड़चन रूप लग रहा हो, उसका साधक को स्पष्ट दर्शन हो जाना चाहिए।

त्याग करते रहने की जागृति उसे सिद्ध करनी होती है। इतना होने पर भी उसे अर्थात् साधक को अधिक महत्त्व तो उस कार्य के कृपाबल—मदद प्राप्त करने की प्रार्थना, भक्ति, प्रेम और समर्पण आदि की हृदय में रही साधनाओं को देना है, जिस तरह पैर में काँटा लगा होता है, उसका पता चलने पर उसे निकालने के उपाय को मनुष्य अधिक महत्त्व देता है वैसे। इसीतरह नामस्मरण भावना धारणापूर्वक हुआ करे, उस पर उसका महत्त्व बना रहना चाहिए। जिसकी मदद से साधक को ऊपर उठना है, उसके हृदय में स्वयं के हृदय को मिलाकर एकरूप, एकाग्र और संपूर्ण केन्द्रित कर डाले और वह भी प्रेमभक्ति-ज्ञानभाव से करते रहना है। उसकी मदद लेते रहना है। कुछ होने पर उसमें मन-दिल लगाये रखना है।

('जीवनसोपान', आवृत्ति ३, पृ. १९१)

■ भाव का सातत्य :

जप का उद्देश्य है श्रीभगवान की भावना का सातत्य चेतनात्मक सतत बना रहे। जप केवल साधन मात्र है। साधन वह तो ध्यये का मिलाप करनेवाला होने से उस दृष्टि से साधन की इतनी महत्ता है। मात्र साधन को ही खाली खाली पकड़े रखनेवाला कभी भी ध्येय प्राप्त नहीं कर सकता। किन्तु ध्येय को ख्याल में रखकर जो अपना साधन संभाले, वही ध्येय प्राप्त कर सकेगा। किन्तु जो जीव किसी भी प्रकार का साधन लेना ही न चाहता हो अथवा जिस 'जीव को साधना की भावना की धारणा किसी भी प्रकार से जीवित न रह सकती हो उस 'जीव' को ध्येय प्राप्त करने की अवधि न लगेगी। सतत दृष्टि, वृत्ति और भाव से जप भले न हो सके, पर जिस कारण—उद्देश्य से वह लिया जाता है, उस कारण का उद्देश्य दिन के सभी व्यवहारों में यानी कि उसके अंतःकरण में भी सुरक्षित करे, तो उसका नाम जप ही है। जप तो स्थूल है, परन्तु उससे उत्पन्न होनेवाली भावना ही महत्त्वपूर्ण है। *('जीवनप्रवेश', आवृत्ति १, पृ. १४७-४८)*

एक पल भी व्यर्थ जाय तो बहुत ही वेदना होती है। ऐसा अनुभव हो तो वह जीव नामस्मरण में रह सकता है। इसलिए कृपाकर अब उसमें मन—जीव तल्लीनकर रखें तो कुछ अच्छा हो पाएगा। मात्र साधना का नाम लेने से तो कुछ भी हाँसिल न होगा। हिंमत के साथ उसका नाम लेते जाँय। उसमें कोई भी किसी को रोक नहीं सकता।

('जीवनसोपान', आवृत्ति १, पृ. १५९)

■ स्मरण के साथ :

हम जीवनविकास के पथ पर हैं, उसके ज्ञान की सभानता हम में बनी रहे, उसके लिए किसी एक साधन की सतत आवश्यकता रहती

है। यदि हम उस तरह साधना के भाव में संपूर्ण रूप से लग गये होते हैं, ऐसी निश्चित भावना यदि हम जीवन में नहीं रख पाए तो हम स्वयं अपने लिए बेईमान सिद्ध होंगे। हमारे आसपास के यदि हमें दंभी गिनें उसमें उनका दोष नहीं होगा। ऐसी स्थिति हो उसकी अपेक्षा तो मृत्यु उत्तम है। भगवान का नामस्मरण करते हुए कहीं कुछ बीच में नहीं आ सकता। नामस्मरण तो सतत चलना ही चाहिए। मन के रुखों को साथ न दें। संमति न दें और उनसे अलग रहें, वैसा ज्ञानपूर्वक जागृतिपूर्वक अभ्यास भी उतना ही आवश्यक है। इसप्रकार की क्रियाविधि आन्तरिक है। जप जितना बाहर का प्रकार है, उतना ही वह आन्तरिक भी है। जपयज्ञ की भावना से और उसमें चलती निरन्तरता उत्पन्न होने से आन्तरिक बल उन्मेष का अनुभव किया जा सकता है। जपयज्ञ चलता रहेगा तो मन के विभिन्न प्रकारों का इन्कार करते रहें, इसका समझपूर्वक सामना करें आदि सभी सूझा करेगा। अतएव नामस्मरण चाहे किसी भी उपाय से लिया ही करें। नहीं तो खाली खाली भ्रमणा में कूटे जाओगे। हम मानो बड़ी साधना कर रहे हैं, पर करते होंगे शून्य और इसप्रकार बिना काम की जिन्दगी बीत जाएगी। और समय बह जाने पर ऐसी घोर निराशा होगी कि जिसमें से उठने का अवसर ही नहीं आएगा। इसलिए हमें या किसी को दोष देने का अवसर न मिले इसके लिए साधना तो अवश्य करनी ही चाहिए। साधना न हो सके तो साधना का नाम छोड़ देना ही उत्तम है।

('जीवनप्रवेश', आवृत्ति १, पृ. ५१-५२)

नामस्मरण जब ज्ञानभक्तिपूर्वक की जागृति के साथ हुआ करता है, तभी उसमें से हृदय में सच्ची भावना प्रकट हो सकती है। नामस्मरण में ज्ञानभक्तिपूर्वक की भावना उत्पन्न होती रहती है, तभी हृदय में एकाग्रता और एकरसता की भावना आ पाती है। हृदयगत जीव का

चैतन्य संबंध तभी प्रभु के साथ स्थापित हो सकता है। यदि ऐसा नहीं हो पाता है तो उसका कारण भी हमारे अपने जीवस्वभाव के और 'जीव' की प्रकृति के मूल में रहा है। जीवन के प्राकृतिक रुखों, वृत्तियाँ, विचार, भावनाएँ, कामनाएँ, इच्छाएँ, आशाएँ, माँगे, पसंद, नापसंद, अमुक प्रकार की समझ की उलजनें उसी प्रकार के चौखट में ही समझने की संकुचित परंपरा—ऐसी दूसरी अनेक प्रकार की आदतें आदि जैसे-जैसे वे हम में आती जाती हैं, उस समय उस उसमें हम लिपटते जाते हैं। उसमें शांति, प्रसन्नता, तटस्थता, विवेक आदि गुण विकसित करने का ज्ञानभान तो रख नहीं पाते। फिर नामस्मरण में ज्ञानभक्तिपूर्वक की भावना कैसे उत्पन्न होगी ? हम तो जिस प्रकार के खेल की रचना करने की हैं, उसका वास्तविक सही आरंभ तो करते ही नहीं हैं। नामस्मरण, प्रभुभावना आदि होते रहते सभी कर्मों में जीवित रखने का यदि कुछ भी विशेष प्रयत्न हम से न हो पा रहा हो अथवा वैसा करने मन, हृदय से लगे रहने का न बन सकता हो तो जिस 'जीव' को गुरु किया, उसकी भावना हृदय में प्राणवान रखते हुए उसे समग्रतः हृदय में उद्दीप्त करने और उसकी कृपामदद प्राप्त करने का भी यदि ज्ञानभान उत्पन्न न हो पा रहा हो, तो फिर हम किसकी और कैसी साधना कर रहे हैं यह जीव को स्वयं विचार करना होगा। *('जीवनसोपान', आवृत्ति १, पृ. २९४)*

■ स्मरणसाधना :

साधना करनेवाले जीव को गंभीरतापूर्वक विचार करना है कि उसे जीवन की साधना करनी है या खाली खेल खेलना है ? यदि साधना करनी हो तो जीवन के साथ खाली खेल खेलने में कोई सार नहीं है। जो जीव साधना करने को प्रेरित होता है, उसका प्राण यदि साधना के कारण भाव में न पिरो पा रहा हो तो अभी उसका मन साधना करने का नहीं हुआ ऐसा समझें। तो फिर ऐसे जीव को

श्रीप्रभुकृपा मदद से स्वयं अधिक जागृत होकर स्वयं से जितना हो सके उतनी जागृति से इस प्रकार के प्रयत्न में सतत लगे रहना चाहिए। ऐसा प्रयत्न करते-करते ही भावना का सतत प्रवाह बना रह सकेगा। जो संघर्ष करेगा और वह भी ज्ञानभक्तिपूर्वक संघर्ष करेगा, वही जाग पाएगा। *('जीवनसोपान', आवृत्ति १, पृ. २९५)*

■ सतत प्रयास :

जैसे बालक टकराते हुए अनेकबार गिर जाने पर भी और अनेकबार लड़खड़ाने पर भी वह स्वयं चलने का प्रयत्न नहीं छोड़ देता अथवा चलने की अपेक्षा नकारात्मक लगती क्रिया को लक्ष में नहीं लेता, वैसे ही हमें करना चाहिए। तभी हम प्रभुकृपा से लाभान्वित हो सकते हैं। इसलिए सतत उस मार्ग के प्रति हमारा सजग प्रयास यदि सतत बना रहे और श्रीभगवान के नामस्मरण में हमारा दिल डूबा रहा करे और असफल होने पर या नकारात्मक रुख आने पर श्रीभगवान की प्रार्थना द्वारा कृपामदद माँगने की प्रक्रिया बनी रहे तो हम अवश्य जी सकते हैं। *('जीवनमंडाण', आवृत्ति १, पृ. ३४)*

भगवान के नामस्मरण की धुन चलाते रहना, उस धुन की मस्ती में श्रीप्रभुप्रीत्यर्थ सारे कर्म यज्ञभाव से करते रहें, उन्हें फिर ज्ञानभक्तिपूर्वक समर्पण करते रहें। यदि भगवान के पथ पर जाना है तो ऐसा किए बिना पार नहीं हो सकते। हमारा संग भी प्रेमभक्तिज्ञानपूर्वक प्रत्येक पल जागृत रहे; तभी आगे बढ़ सकता है। भगवान हजार हाथवाले हैं, उसे जो भी है सभी सौंपने का ज्ञानपूर्वक भान रखें तो वह सब संभाले ऐसा है। सौंपने का अर्थ ऐसा है कि उसे सौंपने के बाद उस समय में कुछ भी विचार हमें न आएँ। हम परमशांति का अनुभव कर सकें। संसार-व्यवहार के कर्म में भी हम उसे खुश रखने के लिए करें और ऐसे उसकी भावना में निश-दिन डूबे रहें तभी श्रीप्रभु की लगनी लगने वाली है—अन्यथा नहीं। *('जीवनमंडाण', आवृत्ति १, पृ. ३५)*

■ अभ्यास से शुद्धि :

श्रीभगवान के मार्ग पर चलनेवाले जीव को अपनी प्रकृति पूरी तरह जाननी चाहिए। हमारे आंतरिक शत्रु के मात्र तूफान–उदण्डता ही नहीं, पर उसी प्रकार के स्थूल या सूक्ष्म आक्रमणों को उसी पल ही जान लेना चाहिए। उन-उन पलों में उसे जाग्रत रहकर या होकर श्रीभगवान की प्रार्थना कर, वह सभी प्रेमभक्तिपूर्वक भावज्ञानपूर्वक समर्पण किया करें। काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर नाना प्रकार की अहंता और नाना प्रकार के ममत्व—उन सभी से मन को अलग रखना, यह तो मानो कि 'जीव' का काम भले न हो और जीव का ऐसा सब होने पर भी जिस जीव का श्रीभगवान के चरणकमल में ही मात्र पड़े रहने का निर्धारित किया है, ऐसे जीव की दृढ़ निश्चय की कसौटी कितनी ही बार होते रहती है। वह स्वयं अनेकबार गिरता तो रहता है ही और छिलता भी है, परन्तु उसकी दृष्टि तो सतत एकसमान रूप से जीवनविकास के प्रति ही बनी रहती है और उसके ध्येय से वह कभी भी हठता नहीं है। वह गिरता है, उठता है, उसकी उसे कुछ भी चिन्ता नहीं होती है, किन्तु उसके ध्येय में से थोड़ी भी नजर चूकने पर उसे हजारों बिच्छुओं के डंख से भी अधिक वेदना होती है।

यह मात्र कल्पना के आधार पर नहीं लिखा है, पर अनुभव का कथन है। इसलिए यदि हमारे जीवन का ध्येय श्रीभगवान के चरणकमल का सुंदर अलभ्य लाभ ही एकमात्र हो तो हमारी दृष्टि वहीं की वहीं रहा करती है, ऐसा हमें प्रयत्नशील रहना चाहिए। ऐसे प्रामाणिक और सच्चे मंथन से किसी दिन सही प्राण आ जाएगा, यह निश्चित मानें। जो जीव पथ पर कदम बढ़ाता रहता है, वही जीव एक बार पथ काट सकने, पार करने में भाग्यशाली होनेवाला हैं, ऐसा जो जीव नहीं मानता वह तो मात्र वहीं का वहीं रहनेवाला है। इसलिए जिसे पहुँचना है, उसे एक पल भी बैठकर गँवाना नहीं है। इसलिए कृपाकर बैठे मत रहो।

('जीवनमंडाण', आवृत्ति १, पृ. ७-८)

■ स्मरण क्यों ?

बुद्धि और प्राण ये हमारे आधार के करण शान्त पड़े बिना, संपूर्ण शुद्ध हुए बिना, श्रीभगवान के चरणकमल में आसक्ति प्राप्त करना, लगभग असंभव वास्तविकता है। सबसे अधिक तो प्राण 'जीव' को जीवभाव में रखनेवाला है। बुद्धि में सात्त्विकता, तेज, सूक्ष्मता और आरपार बेध सके ऐसी वेधकता श्रीभगवान में श्रद्धा रखे बिना, प्राणवान हुए बिना, कभी भी उद्‌भव नहीं हो सकती। बुद्धि हमें अस्थिर और डाँवाडोल करती है और जीवनविकास के ध्येय से दूर भी फेंक देती है। यदि हमारी दृष्टि सतत एकसमान जीवनविकास के ध्येय के प्रति जाग्रत रहा करे तो हमें सही समय पर जगाकर सावधान करनेवाली भी वही होती है। इससे संघर्षरत का वह शत्रु–मित्र जैसी होती है। जो खोजता है, उसे वह मिलता हैं। संघर्ष करता है, वह प्राप्त करने के मार्ग पर है। अन्य के तो मुँह खुले ही रह जाते हैं। हमें तो मात्र उसे ही याद करते रहना है। परन्तु वह किस लिए उसका संपूर्ण रूप से जागृतिपूर्वक ध्यान रखना है, इसमें ही तथ्य है। निराश होने का कोई कारण नहीं है।

मेरे जैसे को तो महामुसीबतें थीं। खाने की तो कठिनाई नहीं थी, पर गरीबी तो पूरी और पक्की थी। तब भी उसके नाम के रटन का अभ्यास जारी ही रखा था। पोने चार वर्ष और वह भी सतत और एकसमान होते हुए बीते। भूल जाता तो कैसा होता वह बतलाया है, इसलिए अभ्यास के बिना चारा नहीं। अभ्यास बढ़ते ही वैराग्य जागता है। जिसे वैराग्य जाग जाता है, ऐसे 'जीव' को अभ्यास सहज और सरल होता जाता है। *('जीवनमंडाण', आवृत्ति १, पृ. ७–८)*

■ ज्ञानभाव के साथ स्मरण :

ज्ञानभाव से बड़ों की मर्यादा का पालन करें और घर में हमसे जितना हो सके उतना सुमेल बनाए रखें और घर का वातावरण जितना

शान्तिपूर्ण और प्रसन्नतायुक्त रख सकने में जितना भाग ले सकें उतना हृदय की उमंग से भाग लें। ऐसा करने के लिए यदि घिसना या सहना पड़े तो, वह भी एक प्रकार का यज्ञ है, ऐसा समझें।

हो सके उतना नामस्मरण करते रहें। जीवन में विवेकयुक्त नम्रता रखें। यदि विवेक न आये तो वह साधना नहीं है। विवेक की भूमिका तो समता, तटस्थता आदि भावों के साथ समाहित है। सभी के साथ सुमेल भाव के साथ जीना है। **सभी में श्रीप्रभु की कृपालीला का ही विस्तार है ऐसा समझकर सभी के प्रति ऐसा भाव मनहृदय से रखना सीखना है।** हमारे अंतर में जो भगवान विराजमान हैं वही हमारे तारणहार हैं। उसकी ही 'सगाई' सच्ची है। ऐसा ज्ञान जीवन में उतारने के लिए मिले हुए में ऐसा भाव जगाना है। संसार में रहकर ऐसा भाव रह पाना दुर्लभ है ऐसा अनेक कहते हैं, परन्तु यदि श्रीप्रभु के चरणकमल में ज्ञानप्रेमभक्ति आ जाय तो सब संभव है। इसलिए उसकी ज्ञानभक्ति में मस्त हो जाँय। स्मरण में तल्लीनता अनुभव करें।

('जीवनमंडाण', आवृत्ति १, पृ. ४-५)

संसारव्यवहार के संबंधों में, सांसारिक व्यवहार की रीति से हमें आचरण नहीं करना है और संबंधों के अनुरूप मन भी नहीं रखना है या उनमें नहीं पिरोना है। प्रभु की भक्ति व्यक्त और अव्यक्त दोनों हैं। जिस समय जो कुछ काम मिले उस काम में श्रीप्रभु की स्मरणभावना और धारणा जाग्रत रखकर उस उस 'जीव' के संबंध को हमें गौण समझ आचरण करना है।

प्रतिज्ञा ऐसी होनी चाहिए कि जिससे जीवन का विकास बढ़े और उसके प्रति सूक्ष्म समझ भी आती जाए..... जो जो संबंध हैं उन सभी को त्यागना भी नहीं है। छोड़ना भी नहीं और साथ ही बढ़ाना भी नहीं है। परन्तु जैसे-जैसे जहाँ-जहाँ हों वैसे-वैसे जो हुआ करे उसमें

ज्ञानपूर्वक का प्रेमभक्ति का चैतन्यपूर्ण स्मरण रहा करे, इतना लक्ष्य में रखना है। **हो सके उतना कम से कम बोलें और प्रभु का स्मरण करते-करते जो-जो कर्म करने को प्राप्त हो, उस कर्म को करते करते प्रभु की भावना को अधिक दृढ़ करें।**

('जीवनमंडाण', आवृत्ति १, पृ. ४१-४२)

■ जोर से स्मरण :

भगवान का नामस्मरण सतत एकसमान हुआ करे उसकी बहुत सावधानी रखें और हृदय में बहुत भक्तिभाव करते-करते एकाग्र चित्त से उसका नाम जोर से लिया करें। इससे किसी को अच्छा लगे या बुरा लगे उसका बहुत विचार करने जैसा नहीं है। कोई पूछे तो कहना कि मन विचार करते हुए अटके इसके लिए ऐसा कर रही हूँ।

('जीवनमंडाण', आवृत्ति १, पृ. ११६)

नामस्मरण भले शुष्कता से होता हुआ लगे तब भी लिया करें। संतोषकारक न हो रहा हो ऐसा लगे तब हमारा मन दूसरी किसी बात में पड़ गया है, यों समझना। *('जीवनमंडाण', आवृत्ति १, पृ. १४८)*

■ मन और स्मरण :

भगवान का नामस्मरण मन को उसकी लीक पर से हटाने के लिए उत्तम साधन है। मन जो जो विचार करता है, उसके परिणाम को उसी तरह से घटित होते हुए रोकने के लिए नामस्मरण का उस उस पल उसके साथ मिलाना मन हृदय से स्वतः होता रहेगा, अतः मन के ऐसे-ऐसे उन-उन पलों के विचारों का जोश, उसकी छाया और उसके संस्कार मंद पड़ते जाएँगे, यह बात निश्चित है। जैसे कि विष हो, परन्तु उसके साथ उसके विरुद्ध दूसरा कुछ मिलाया गया हो, तो उसकी मात्रा घटती है और विष का प्रभाव भी घटता जाएगा और जिस जिस प्रकार का फल उससे आनेवाला हो, उस ढंग से उसका फल न

आ पाए यह संभव है। उसी तरह यदि मन की मन से होनेवाली सारी प्रवृत्तियों में समझपूर्वक का भावनापूर्ण भगवान का नामस्मरण सतत सजग चलता रहेगा तो हम संसार के सिकंजे से मुक्त हो सकते हैं। जब तक मन का स्वभाव नहीं बदलता, तब तक मनुष्य को किसी में से मुक्ति नहीं मिल पाती। इसीलिए सभी धर्मों ने मनशुद्धिकरण को महत्त्व दिया है।

जीवन की समझ और जीवन को हम किस मार्ग पर ले जाना चाहते हैं, उन दोनों की जाग्रत धारणा मन को तालीम देने के लिए मुख्य साधन है। संसार की प्रवृत्ति से 'जीव' को कभी शांति नहीं मिलेगी यह तो ठोस सत्य है। संसार को छोड़ने पर भी नहीं छोड़ सकते। **संसार हमसे चिपका नहीं है पर हम संसार से चिपके हैं।** अतः हमें मन की स्थिति को बदलना चाहिए। मन अपने आप नहीं बदल पाता। इसीलिए ही साधना की आवश्यकता है। इसीलिए मेरी तुम्हें हृदय से प्रार्थना है कि उसे बदलने के लिए प्रभु के नाम का प्रेमभक्तिपूर्वक का (१) सतत एकसमान स्मरण—यह एक मुख्य साधन (२) दूसरा साधन, वह प्रतिदिन होनेवाले सारे कर्मों में श्रीभगवान की भावना और धारणा प्राणवान बनी रहे उसके लिए दृढ़तापूर्ण अभ्यास और (३) तीसरा साधन, वह जीवन में आनेवाले सभी प्रसंगों में समता, शांति, धीरज, तटस्थता, दूसरों के प्रति सहानुभूति आदि गुण हमें विकसित करते रहना है। यदि जीवन की भावना विकसित करने की हम में सचमुच की भावना जागृत हो गई है तो जो कुछ भी होता रहेगा वह हमारे विकास के लिए ही है; ऐसी अनुभव की समझ उस उसमें से जागती ही रहेगी। ऐसा होने से मन को सर्वप्रकार के बंधनों से मुक्त करने के लिए प्रत्येक साधक को इतना तो अवश्य करना ही पड़ेगा।

जो चल रहा है उसे कोई उलझन नहीं आती। चलनेवाला तो उलझन, कठिनाई, संघर्ष, गुत्थी, बेचैन, संताप, त्रास, दुःख—इन

सभी को योग्य ढंग से सुलझाकर ही आगे बढ़ने को समझता है। चलने का जिसने दृढ़ निश्चय किया है, उसे संसार में कोई भी नहीं रोक सकता, ऐसी उसकी खूबी है।

('जीवनप्रेरणा', आवृत्ति २, पृ. ६९-७०-७१)

■ जपयज्ञ :

जप को यज्ञ गिना है। जप यह एक बड़े से बड़ा सहज और सरल साधन है। सामान्य रूप से जप छोटे से छोटा होना चाहिए। वह बोलने में क्लिष्ट नहीं पर सरल होना चाहिए। ह्रस्व हो तो उत्तम। शब्द के तीन स्थल है—(१) नाभि (२) कंठ और (३) ब्रह्मरंध्र। जप ऐसा होना चाहिए कि वह तीनों का स्पर्श कर सके और एक-एक स्थल पर से जप का अमुक अमुक अक्षर का भावपूर्वक के उद्देश्य की धारणा के साथ उच्चारण हो और वैसे जप की धारणा में अटूटता प्रगटे तो वह साधना अति उत्तम है। जप को यज्ञ इसलिए कहा है कि जप करते करते भगवान के लिए अर्थात् हमारे ध्येय के विकास की भावना को प्राप्त करने हेतु हमें समर्पित हो जाने का जोश, दिल्लगी दिल से आना चाहिए। यज्ञ में सर्वस्व होम कर देना होता है। इसलिए हमें जो कुछ भी मनादिकरण में उद्‌भव हो वह सभी उस यज्ञ में ज्ञानभक्तिपूर्वक होम करते रहना है और उसके साथ ही प्रार्थना भी करनी होती है। यज्ञ यानी आहुति देते-देते ध्येय को प्राप्त करें अथवा तो ध्येय सिद्ध हो वह। वह तब हो सकता है, जब उसके अनुकूल परिभूमिका, परिवेश खड़ा कर सकें। जब जप के साथ धारणा में हृदय का भाव आता है और उस भाव का सातत्य बना रहे, तब उस भाव द्वारा जिस प्रकार का रस निचुड़कर निकलता है, उस रस के प्रभाव द्वारा ध्यान में लगातार तल्लीन-मग्न हो जाते हैं और ऐसा करते करते ध्यान की पराकाष्ठा में

पहुँचते जाते हैं और अंत में तो सत्य के विभिन्न पहलुओं के दर्शन होते रहते हैं।

यदि हमें भगवान के मार्ग पर जाना हो तो जीव प्रकार की सभी प्रवृतियाँ जो सदा अहंप्रेरित होती हैं, उन सभी को और मनादिकरण के सभी प्राकृतिक धर्मों को समझ-समझ त्यागना होता है . यह कोई एकदम से नहीं हो जाता। यदि हमें जीवन के ध्येय के प्रति आगे बढ़ने की सचमुच दिल में ठान लिया होगा तो हम में उसके प्रति गति उत्पन्न होगी, उसके लिए कुछ न कुछ सूझता रहेगा। जब जब सचमुच कुछ कहीं में दिल लगता है, तब तब हमारा हृदय उसके लिए अवश्य कुछ न कुछ सोचने लगता है और उसके लिए कुछ न कुछ उपाय भी सूझ जाता है। और दिल उल्लसित होने से स्वयं हल और सुझाव भी आने लगते हैं। इस मार्ग पर जाना हो तो जीव प्रकार की सभी कामनाएँ, आशाएँ, इच्छाएँ, तृष्णाएँ, लोलुपता, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि आदि उमंग के साथ जीवनविकास के यज्ञ में आहुति करने की तैयारी हमारी होनी चाहिए। यदि यह न हो सके तो एक सुई की नोंक बराबर भी हम आगे नहीं बढ़ सकते हैं, यह निश्चित है।

('जीवनसंशोधन', आवृत्ति १, पृ. ३२०-३२१)

॥ हरिः ॐ ॥

॥ हरि:ॐ ॥

६. नामस्मरण साधना

■ निराशा की स्थिति में :

जीवन में कितने ही ऐसे भयंकर निराशा के क्षण आयें, तब कहीं भी कोई सहायक मिले ही नहीं या किसी का भी साथ न था या न थी किसी की जरा सी भी सहानुभूति; न था ऐसा कोई हृदय का साथी, न था सही ऊष्मा देनेवाला, कहीं भी कोई नजर न आए कि जिसके संकेत से कुछ भी आशा, बल मिले। जीवन में बस सर्वत्र सुनसान था। ऐसे समय में भी उसके नाम का मधुर प्रिय स्मरण का एक साथ हृदय में था कि जिसके सहारे भयंकर से भयंकर अंधेरे को कृपा से पार कर पाया हूँ।

ऐसे अपार मुश्किल समय में, हृदय में उसका नाम लेते गये, उसी को सब सौंपते गये, उसके सहारे का हाथ पकड़कर, बस, हो उतना बल लेकर, हिंमत, साहस, धीरज और दृढ़ता धारण की, ऐसे समय में उसकी कृपा से खड़ा रहने का सामर्थ्य जुटा पाया हूँ। सही मर्दानगी दिखाने का अवसर ही जीवन में ऐसे समय में ही होता है। ऐसे कठिन क्षणों में जो टिककर खड़ा रह सकता है, वही मरद है। इस मार्ग में हिंमतरहित नहीं चल सकता। मरणांत पर भी जिसका साथ न छूट सके ऐसी अदम्य प्रेरणा जिसके हृदय में जाग चुकी है, एकमात्र उसका ही इस मार्ग में काम है। ऐसे ही जीव इस मार्ग में टिक सकते हैं। *('जीवनपोकार', आवृत्ति-१, पृ. ३३६-३३७)*

■ स्मरण का परिणाम :

हमें अपना काम रुचि, उत्साह, उमंग के साथ करते रहना है। जरा भी आलस्य या उदासीनता या ऊब नहीं होनी चाहिए। भगवान के नामस्मरण से यदि इतना प्राप्त न हो सकता हो तो हम कहीं गलत रास्ते पर टकरा रहे हैं, ऐसा समझना है। नामस्मरण में जो जीव होना चाहिए वह जीव अभी हमारे में नहीं आ पाया, ऐसा उसका अर्थ है। हमें सदा नामस्मरण की भूमिका पर महल बनाना है। हमारा यह एक बड़े से बड़ा साधन है। अन्य सभी साधन तो उसमें एकाग्रता बढ़ाने के लिए हैं और नामस्मरण भले ही मुख्य हो पर बाद में उससे जो शक्ति हमारे में जागती है, उसे ही हमें अपने आपको बाद में सौंप देना है। नामस्मरण मुख्य रूप से तो अभी फिलहाल सुषुप्ति में पड़ी हुई शक्ति को जागृत करने के लिए तथा रुचि जगाने के लिए आवश्यक है। ऐसी शक्ति जागने के बाद ही सही युद्ध तो चलता है और तब हमें सभी प्रकार की समझ विशुद्ध रूप से आने लगती है।

('जीवनपगरण', आवृत्ति १, पृ. २१२-२१३)

हमारी आँख थोड़ी भी खुली होती है, तब उस दृष्टि से देखते हुए भगवान ने हमें सावधान किया, ऐसे कितने ही उदाहरण मिल जाते हैं। पर यह आँख फिर बंद होती है, यह हमारा दोष है। क्षणभर तुम्हें चिनगारी लगेगी, पर फिर हम तो 'हे भगवान वहीं के वहीं !' इसलिए हमें बार-बार जाग्रत होना है और स्थिर होना है। ऐसा होते होते और ऐसा अभ्यास होने पर जाग्रति भी एकसमान सतत आने लगेगी।

मन इसप्रकार के भाव में लगातार रहा करें और इसके लिए जाग्रति बनी रहे इसके लिए सर्वश्रेष्ठ सरल और सहज साधन नामजप है। नामस्मरण का प्रभाव अपरम्पार है। दिन का समय अधिक से

अधिक यदि दे सकें, हमारी सारी शक्ति एकत्रित कर उसका बड़ा हिस्सा उसमें खर्च करें तो भावना में सातत्य भी आ सकता है। नामस्मरण की भावना जीवन में जब आती है, तब उसमें सत-असत का विवेक भी आता है। सद्भाव का प्रभाव आये बिना नहीं रह पाता। जैसे किसी अमुक ही रोग के लिए दवा ली गयी हो और वह रोग दवा से मिटे इतना ही नहीं पर उसके परिणाम से पूरा शरीर तंदुरस्त हो जाय, उसी तरह जीवन में जब सद्भाव आता है, तब ज्ञान-भक्तिपूर्वक की वैसी सद्भावना समग्र जीवन पर अपना प्रभाव डालती है; और सद्भावना से होते लगातार आचरण से गुण और शक्ति भी आती है। नामस्मरण की भावना जिसके हृदय में उदित होती है, उस-उस प्रमाण में जाग्रत हो होकर उसमें दिल लगा लगाकर यदि थोड़ी बहुत भी तरंगें आएँ और उस ओर मुड़ने का सचमुच दिल होता है तो तुम्हें उस मार्ग में जाने की पूर्ण संभावना है। ऐसा लगातार अभ्यास करते-करते उसके बलशाली बहाव में सब बह जाने का और उस बहाव के प्रचंड वेग के बीच पड़े पत्थर या चट्टान आये तब भी उन्हे काट कर या एक तरफ रखकर वह बहाव कितने ही आगे दौड़ जाएगा। परन्तु इसमें एक तर्क-दोष है। भगवान की ऐसी भावना जागते-जागते प्रकृति को हमें कहीं किनारे नहीं रख देना है। प्रकृति यानी इसका सारा निष्कर्ष—आग्रह, मान्यताएँ, आदतें, उलझन, स्वभाव, मनादिकरण और शरीर आदि आदि। यह सारा यदि बदला नहीं जा सकता हो, तो फिर हमें ऐसी साधना की जीवन में बहुत आवश्यकता नहीं और उपयोग भी नहीं है। जैसे हैं वैसे के वैसे रहें, आत्मा का दर्शन होता है ऐसा यदि कोई कहता है या मानता है तो वह मिथ्या है, भ्रम है। **इसलिए हमारी साधना के जीवन्त आदर्श के साथ-साथ हमें दिल में सतत एकसमान लक्ष्य रखने की आवश्यकता है कि**

इस साधना के ज्ञानभक्तिपूर्वक के अनुशीलन–परिशीलन के साथ-साथ अपने स्वभाव और प्रकृति में भी परिवर्तन आता जाय और उसके प्रति सच्चा दृष्टिबिंदु विकसित होता जाय वह भी बहुत आवश्यक है। *('जीवनसंशोधन', आवृत्ति २, पृ. २४४-४६)*

■ निर्बलता से मुक्ति :

जिस 'जीव' को जाग्रति न रहती हो, उसे तब तक उसका सभी कच्चा समझें, क्योंकि वह कभी भी असावधान हो जायगा ही और कहीं भी बहकर दूसरे मार्ग पर चला भी जायगा। वह स्वयं को रोक सके उतना आंतरिक बल तो पैदा नहीं कर पाया है। अतः वैसे जीव नामस्मरण कर करके, अपनी निर्बलताओं से मुक्त होने, उसकी असर से जीवन में प्रभावित न होने के लिए, ऐसी घड़ी में श्रीभगवान की कृपा-मदद के लिए प्रार्थना करते-करते स्वयं उत्कटता से सजग होने का प्रामाणिक प्रयत्न करना होता है। जो जीव हृदय से ऐसा प्रामाणिक प्रयत्न नेक दानत से किया करते होता हैं, ऐसे 'जीव' को नाहिंमत होने की कोई बात नहीं रहती है। वह तो गिरे, गिरे और फिर उठे ऐसा अनेकबार जीवन में होता रहता है। ऐसी चढ़-उतर से 'जीव' को सही जीवन की झाँखी मिलती है। ऐसा जीव स्वयं के जीवनसंग्राम में मौत की चिंता किए बिना भी खड़ा और दृढ़ होना प्रभुकृपा से सीखता है। इसलिए प्रयत्न करते रहने से ही जीवन की उषा का उदय होता ही है, यह निश्चित जानें। *('जीवनपोकार', आवृत्ति १, पृ. १५)*

■ हरिःॐ की धुन :

जब मन में हलकापन न लगे तब अधिक खुल्लेपन से 'हरिःॐ' के नामस्मरण की धुन उत्साह और प्रेम से चलानी चाहिए। मन का आवेग और आवेश के विक्षेप के कारण यदि मार्ग भटक जाँय और

उसकी हमें समझ नहीं पड़ रही हो ऐसा लगे तब नामस्मरण करते-करते तटस्थतापूर्वक अपना पूरा पृथक्करण करें और मूल कारण को पकड़ लेना चाहिए। साधक के लिए यह सब बहुत आवश्यक है। कहीं कुछ ऐसा का ऐसा सरक जाय ऐसा नहीं होना चाहिए। सचमुच तो सहज रूप से ऐसा होने से साधक को समझ आ जाना चाहिए। वैसा समझने का प्रयत्न न करना पड़े तो ठीक रहेगा; ऐसी स्थिति सहज हो जानी चाहिए। परन्तु ऐसी स्थिति प्रयत्न करते-करते ही आएगी, ऐसा निश्चित समझें। जब हम समता-तटस्थतापूर्वक पृथक्करण करते हों उस समय हृदय का महत्त्व तो नामस्मरण में तल्लीन रहे और पृथक्करण करने में दूसरे मार्ग पर जाने का मूल कारण समझ लें और उसका निराकरण हो इसतरह का तरीका जीवन में आ जाना चाहिए।

('जीवनमंथन', आवृत्ति १, पृ. ३५२-५३)

■ स्मरण में बाधाएँ :

श्रीभगवान में संपूर्ण लगनी या प्रेमभक्ति पैदा हुए बिना उनका स्मरण लगातार रह पाना दुर्लभ है। परन्तु पूर्ण लगनी या ऐसी उत्कट प्रेमभक्ति कोई यों ही पैदा नहीं हो जाती। यह तो मार्ग की ओर का आहिस्ता और आहिस्ता जोशीला पुरुषार्थ होते-होते हो जाएगा।

प्रभु का नाम प्रभुकृपा से लेने लगे कि बस लिया ही जाएगा, ऐसा कुछ नहीं है। प्रभु के चरणकमल में रहने के इच्छुक जीव पहली बार कदम उठाए यानी कि उसके बाद वह एक के बाद एक ऊर्ध्वगति में कदम भरता जाएगा, ऐसा कुछ भी नहीं है। वह तो कितनी ही बार चढ़ता और गिरता है। ऐसी स्थिति में जो जीव सदा अपने ध्येय की तरफ दृष्टि रखा करता है, ऐसा जीव उसके भ्रम-भुलावे से, वैसी प्रकृति के भँवर में से निकल पाने में प्रभुकृपा से भाग्यशाली हो

सकता है। अन्यथा उसी प्रकृतिमाया के जाल में उलझे वहीं के वहीं भटकते रहते हैं। जो जीव जाग्रत रहता है, वह गिरने पर भी खड़ा होनेवाला ही है। नामस्मरण के पीछे तो सच्चे हृदय का ज्ञानभक्तिपूर्वक का संपूर्ण पुरुषार्थ होते जाता होगा तो तो नामस्मरण सतत लगातार चलता रहेगा। श्रीभगवान हमें सतत प्रतिक्षण प्रेम करते होते हैं, प्रतिक्षण आनंद का सिंचन करते रहते हैं। अनेक रूप से बाह्य और आंतरिक शरीर का पालनपोषन भी वही करते रहते हैं। उनके चेतन बिना कुछ भी नहीं चल पाता। उसकी तुलना में हम उसे याद ही नहीं करते है। जितना वह हमारा करते हैं और वह जितना हमारा होता है, उसके प्रमाण में हम तो उसे दूर रखकर ही आचरण करते हैं। उसका प्रायश्चित भी 'जीव' को नहीं होता। श्रीभगवान का नाम भूलने पर हमें असह्य वेदना होनी चाहिए। *('जीवनमंडाण', आवृत्ति १, पृ. ६-७)*

■ दुर्लभ नामस्मरण :

हमें जिस ओर जाना है उस ओर जाने में जो कुछ भी रुकावट आती हो, उसके विषय में गहन विचार करें और हम अपना निर्दय रूप से पृथक्करण किया करें। साधक को मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहंकार— इन पाँच तत्त्वों के मोड़ों को संपूर्ण रूप से समझ लेना चाहिए। इसे समझे बिना भी केवल भगवान का नाम लिया करें, तब भी वे ठिकाने पर आ सकते हैं सही; पर हमें तो ज्ञानसहित बुद्धि की मदद लेकर वह सभी किया करना है।

कल पूज्य के साथ कथा से लौटते हुए उन्होंने पूछा कि इस संत-महात्माने भगवान का नाम लेने के विषय में जो समझाया वह तो सारा कोरी बुद्धि का अनुमान है। आदत के अनुसार नाम का स्मरण हुआ करे तो क्या लाभ होगा ? मैंने उन्हें कहा कि नाम का सतत स्मरण करना यह

सरल बात नहीं है। आप इतने दिनों से मन को ठोक पीटकर नाम का स्मरण करते रहते हैं तब भी उसे भूल जाते हैं। कोई भी मनुष्य भगवान का नाम यों ही नहीं ले सकता। सतत भगवान का नाम लेना यह हँसीखेल की बात नहीं है। यदि इतना अधिक चैतन्य रखने के बाद भी और जागृति रखते हुए भी नामस्मरण सतत नहीं बना रहता तो वह मात्र आदतानुसार कैसे रहेगा ? यों मानो कि आदतानुसार रहे तो भी उसका परिणाम बेकार नहीं जाता। जैसे कोई किसान बीज बोने से पहले अपने खेत में खाद डालकर, जोतकर जमीन नरम-नरम बनाता है। उसके बाद बीज बोता है और भगवान की कृपा रूपी वर्षा होती है तो उसमें से सुपरिणाम आये बिना नहीं रहता। परन्तु कोई आलसी किसान ठीक से जोते नहीं, खाद न डाले और बीज बो दे तब भी थोड़ा बहुत उगे बिना नहीं रहता। कुछ नहीं तो पशुओं के खाने का चारा तो होगा ही। इसलिए भगवान का नामस्मरण यदि खाद देकर जोते यानी कि हमारे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहंकार—इन सभी को नामस्मरण के उग निकलने की भूमिका के योग्य तैयार करके नामस्मरण लिया करें तो ऐसा मनुष्य प्रत्यक्ष परिणाम को अपने जीवन में अनुभव किए बिना नहीं रहता। इसके लिए अत्यन्त अपार धीरज और अत्यधिक पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। *('जीवनपाथेय', आवृत्ति ३, पृ. १८१-८२)*

■ स्मरण से सभानता :

स्वजन : ऊर्ध्व में जाने के लिए 'हरिःॐ' बोलते रहेंगे तो इसे एक आदत नहीं कहा जाएगा ?

श्रीमोटा : नहीं, ऐसा है कि यह आदत हुई। पर आदत से जो जागृति आती है, हम में जो सभानता आती है, वह सभानता हमें ऊर्ध्व मार्ग की ओर ले जाती है। फिर भले न यांत्रिक ढंग से करें। मानो कि

यांत्रिक किया करें, पर रोज के चौबीस घण्टे में जब अधिक से अधिक चौदह-पन्द्रह घण्टे हों तब यह यांत्रिक नहीं रहेगा । फिर automatic (स्वतः) हो जाने पर उसमें सभानता आ जाती है ।

('अग्रता-एकग्रता', पृ. १३२)

■ जप के साथ साथ

काम में मन रहने से यों तो जप टूटेगा, पर वह न टूटे ऐसा प्रेरकबल हमें लाना है । हमारे शरीर के किसी भी एक अंग के हलनचलन के साथ जप का संधान कर देना है। जैसे कि हम काम करते हों तब भी हम पैर के अंगूठे को ऐसी आदत डालें कि वह सभान हिला करे और उसके साथ मन में जप चलता रहे। हाथ की उँगली या पैर की उँगली को भी ऐसे उपयोग में ले सकते हैं। और आखिर में तो जप एक भाव ही है न ? उस भाव को इसतरह मूर्त स्वरूप दे सकते हैं । बार-बार मन को चेतावनी देते रहेंगे । जप जारी रहे तो मन को आगे सरकाने का काम सरल हो सकता है ।

यदि हम जप हृदय की धड़कनों की लय के साथ ठीक से करें तो हमारा ध्यान तो अपने आप वहीं रहेगा। माँ कहीं भी हो पर बालक जब तक पूरी तरह चलना न सीख ले तब तक वह जहाँ भी चल रहा होगा वहाँ-वहाँ माँ का चित्त होगा ही। इसीतरह जप का उद्भव स्थान हृदय है। इसलिए यदि हृदय-धड़कनों के साथ जप होने लगा और वह अभ्यास स्थिर हुआ तब तो वह वहीं से ही उठेगा—और फिर यदि उसमें भाव बढ़ता गया तो धारणा तो अपनेआप स्वतः रहने लगेगी । जैसे नदी पर्वत से निकलकर अपनेआप समुद्र से मिलती है वैसे ही हमारे प्रयत्न से हृदय की धड़कन के साथ जप प्रेमोर्मि से—भाव से करने की आदत हमें पड़ जाएगी तो तीनों—जप, ध्यान और धारणा—ठीक से होंगे । *('जीवनपगरण', आवृत्ति १, पृ. ४५-४६)*

जप में हमेंशा चैतन्य भाव बना रहे यह बहुत आवश्यक है। उसमें ऐसी आर्द्रता आए, भाव उत्पन्न हो इसके लिए कुछ कुछ देर में यदि हमें जिस किसी भजन में विशेष अभिरुचि हो और जो प्रार्थना के रूप में हो ऐसा भजन गाएँ जो हमें भावना में आर्द्रता पैदा करे। ऐसे भजन दो-तीन बार गाएँगे तो एक प्रकार की भाव विह्वलता आएगी और ऐसी भावुकता का उपयोग हमें नामस्मरण में करना है। फिर, कितनी ही बार हमारे प्रिय से प्रिय आप्तजन का भी भाव से स्मरण करने से भावुकता आती है; और ऐसे उत्पन्न हुई भावुकता की मदद से नामस्मरण को अधिकतम भीगा-भीगा रखना है। किसी बार जोर से, उत्साह से कुछ समय तक चिल्लाकर हृदय में हलके होकर फिर दुबारा हमें नामस्मरण में लग जाना चाहिए। कोई ऐसा प्रसंग बने और भावुकता जागे, बातचीत से भी कोई ऐसे आनंद का भाव आ जाय, तब तब जाग्रत रहकर उस प्रवाह को नामस्मरण में मोड़ते रहना है। नामस्मरण भावपूर्वक जितना होगा उतना उसमें चैतन्यता आएगी।

('जीवनसंशोधन', आवृत्ति २, पृ. ३६९-७०)

■ भावुकता का उपयोग :

प्रार्थना के बाद जो भाव उछलता है या उभरता है, ऐसे उछलते भाव को हमें यों ही नहीं बहने देना है। यानी कि Emotions (विह्वलता, भाव आदि) के प्रवाह में इन भावों को यों ही बहने नहीं देना चाहिए। परन्तु साधना-भाव की नहर में बहा देना चाहिए। इसका नाम ही विवेक। जो भाव जिस कारण उठे उसी कारण और उसी भाव की लय में यानी जिसके लिए इस भाव का प्रवाह प्रारंभ हुआ हो उसके ही एकमात्र मननचिंतन में न पड़े और यदि उसमें कदाचित् हो जाँय या बह जा रहे हों, तब एकदम संपूर्ण जाग्रत होकर

अथवा सतत जाग्रत रहकर जिस कारण से वह भाव जागा हो, उस कारण को छोड़ दें और भाव को पकड़ लें और साधना के अभ्यास में उस भाव के जोश का उपयोग करें। ऐसे नामस्मरण में उसका उपयोग करें। भाव के आवेश का नामस्मरण में समझपूर्वक उपयोग करने से स्मरण में विशेष भावना प्रगट होती है।

('जीवनदर्शन', आवृत्ति ८, पृ. ८२)

कवि भवभूति के संस्कृत नाटक 'उत्तररामचरित' में अन्य रस होते हुए भी प्रधान रस तो करुणा ही है। उसी तरह भले कोई भी भावना मानी हो पर उसकी गहरायी में तो जप ही होता है। यह तो जैसे हमारा श्वासोच्छ्वास चला करता है वैसे हो जाना चाहिए। भाव और जप दोनों को एक साथ रखा जा सकता है; रखना उचित भी है।

('जीवनपगरण', पृ. १५२)

● ● ●

जप तो हृदय की प्रत्येक धड़कन के साथ एकाकार होना चाहिए और हृदय की धड़कन में समा जाना चाहिए। जैसे-जैसे वह स्थिर होता जाएगा और उसमें पूरा भाव आता जाएगा वैसे-वैसे यह हृदय की धड़कन के साथ समाते हुए लगेगा। *('जीवनपगरण', पृ. १५३)*

जप सुंदर और सात्त्विक तो अंदर से चला करता हो वही अच्छा। पर जैसे आदर्श को एकदम नहीं पाया जा सकता है और कदम ब कदम, धीरे-धीरे बढ़ा जाता है वैसे पहले कुछ समय जिस रास्ते वहाँ पहुँचने की संभावना लगती हो उसी रास्ते जाना चाहिए। अभी के दौर में जीभ हिलाने का रखोगे तो हर्ज नहीं, पर उसके ध्येय को भूले बिना। यांत्रिक, जड़ आदत तभी पड़ती है कि जब उसके मूल उद्देश्य को भूल चुका होता है।

('जीवनपगरण', आवृत्ति १, पृ. १५४-५५)

■ जप के लिए प्रयत्न :

बुखार आता हो तब एक प्रकार के बुखार का वेग होता है और थोड़ी बहुत खुमारी भी रहती है। उस समय भगवान का नामस्मरण करने से बुखार के वेग का उपयोग हो सकता है ..... किसी भी भाव या तरंग का उभार आया हो, तब नामस्मरण करने का हम कभी न चूँकें। *('जीवनपगथी', आवृत्ति १, पृ. १६७)*

जप का सातत्य बनाये रखने के लिए एक बात लक्ष्य में रखनी है। उस पर प्रेम और रुचि। इन दो भावनाओं की मात्रा जैसे बढ़ती जाएगी वैसे जप के सातत्य में सुधार आता जाएगा। इन दो भावनाओं की मात्रा कब बढ़ेगी ? जब हम अपने जीवन में इस काम को ही सर्वोपरि गिनेंगे और उसी को अधिक महत्त्व देते रहेंगे। उसके बिना मात्रा बढ़नी संभव नहीं है। जिस वस्तु की हमें आवश्यकता पड़ती है, उसके लिए मेहनत करके हम उसे प्राप्त करते हैं। यह तो हमारे नित्य के जीवन का अनुभव है। ऐसा ही इसमें हैं। *('जीवनपगथी', पृ. ५२)*

तुम्हें दूसरे काम बहुत भले ही हों पर कृपाकर खूब मेहनत करते हुए नामस्मरण सतत जारी रखने की मेहनत करें। यही हमारा सही काम है। उसे ही महत्त्व देने का रखें। कोई भी उपाय से इसकी याद बनी रहे इतना तो अवश्य करें। काम हुआ ही करेगा, पर सही मेहनत इस काम में लिया करें और कुछ न कुछ उपाय ढूँढ़कर प्रभुस्मरण याद आये ऐसा करना। *('जीवनपगथी', पृ. ८६)*

लिखते–लिखते स्मरणभाव की धारणा बनाये रखने का अभ्यास प्राणवान बनाए रखें। इसमें जब अखण्डता आ जाए तभी उसकी सही शुरूआत होती है। अजपाजप तक पहुँचा जाय तब तो शुद्धि शुरु होने लगती है और शरणागति की स्थिति का मात्र आरंभ होता है। यानी अभी

तो हमारा काम कुछ भी नहीं हुआ। तुम्हें पता भी न चल सकेगा इसतरह बहुत बार यज्ञ में भंग पड़ता रहता है फिर पैर का अंगूठा तो हिलता ही रहे, परन्तु उसके साथ स्मरणभाव का भावना का ज्ञानपूर्वक लय (Rhythem) चलता रहना चाहिए वह तो चला जाता है, वह अंगूठा यंत्रवत् चलता रहा करे, ऐसा भी होता है। इसलिए यांत्रिक रूप से अंगूठा न हिला करे उसे लक्ष्य में रखें तो मुझे बहुत आनंद होगा।

('जीवनसंशोधन', आवृत्ति १, पृ. ६७)

■ स्मरण से प्रसन्नता :

हमारी भावना समझपूर्वक अधिक से अधिक व्यापक बनती जाय, इतना ही नहीं पर वह भावना गहरी होती जाय और उसी के अनुसार हृदय में महक आती रहे तभी ठीक रहेगा। सदा प्रसन्नचित्त अधिक से अधिक रहा जाय तो सरलता अपनेआप रहने लगती है, यह तो हमें समझ में आए ऐसा है। ऐसी स्थिति नामस्मरण जारी रहे तो होती है और उसमें सहजभाव और उर्मि उत्पन्न होती हैं। कुछ भी मन पर लटकता नहीं रहना चाहिए कि जिससे मन को उसमें पिरोये रहने का मौका मिले, इसलिए नामस्मरण सतत जारी रहे उसकी कुछ न कुछ तरकीब खोज निकालें। *('जीवनपगथी', पृ. ८८)*

■ भावना दृढ़ करने के लिए स्मरण :

भावना टिकाए रखने के लिए उसे अधिक तेजस्वी और शक्तिशाली बनाने के लिए, अधिक एकाग्र और केन्द्रित करने के लिए, नामस्मरण एक जबरजस्त साधन है। इससे प्रभु के नाम में तुम मस्त रहो। भगवान का नाम ऊंचे स्वर में लिया करें। उसमें अब मीनमेख से फरक न पड़े, उसे कृपाकर लक्ष्य में रखें। जिसके संग से हमारी जीव वृत्ति अधिक जीवपन की ओर लग जाय, उस संग का

दृढ़ता से ज्ञानपूर्वक इन्कार किया करने में जब बहुत आनंद आये तब हमारी स्थिति उस दिशा में परिपक्व होती जाती है, ऐसा समझें और मानें। कम से कम बोलें और भगवान का नाम ऊँचे स्वर से लिया करें। *('जीवनपोकार', आवृत्ति १, पृ. ८-९)*

हृदय में भावना बनाए रखें और वैसी भावना की भूमिका में नामस्मरण किया करें। नामस्मरण तो एकसमान, सतत 'तैलधारावत्' किया ही करें। भावना से कोरे लगें तो क्या सद्‌गुरु मृत पड़ा हैं ? आखिर हमने सद्‌गुरु बनाया किसलिए ? उसका हृदय में हृदय से भावस्मरण जागते ही हृदय में यदि भाव न आ पाए तो हमारा दिल सद्‌गुरु में नहीं लगा है, यह निश्चित है। 'यह जीव' अपने सद्‌गुरु का पुण्य स्मरण उद्दीप्त करते हुए हृदय में भावना का प्रवाह पैदा कर उसके द्वारा जीवन की साधना का काम उनकी कृपा से किया करता था। मनादिकरणों को शुष्क तो होने ही न दें। भावना से जब वह सराबोर रहा करता है, तब अन्य किसी प्रकार के विचार भी प्रवेश नहीं कर पाते और उठ भी नहीं सकते हैं। ऐसी दशा में नामस्मरण आदि साधन भाव से, एकलय से, एकाग्रता से, अच्छी तरह हुआ करते हैं ऐसा 'इस जीव' का अनुभव है।

('जीवनपोकार', आवृत्ति १, पृ. २५-२६)

■ स्मरण का अभ्यास :

श्रीभगवान का नाम जितना भक्तिभाव से लिया जाय और निरन्तर एकसमान जितना प्राणवान हुआ करे, तो समझें 'जीव' के उबरने की बारी है। इसलिए कृपाकर इसमें ही लक्ष्य पिरोकर एकमात्र हमारा कर्तव्य है ऐसा समझें।

व्यापार-धंधा, संसारव्यवहार, दूसरे संबंध इन सभी में भी प्रिय भगवान का नामस्मरण ही महत्त्वपूर्ण रहा करे, तभी उसकी कैसी खूबी और रहस्य है यह समझ आएगा। उसके बिना क्या समझ में आएगा ?

अमुक अमुक प्रकार के और अमुक अमुक प्रमाण के तत्त्व एकत्रित होने से ही पानी बन सकता है। बाकी दूसरा तो कितना इकट्ठा किया हो, पानी बनाने के जो जो तत्त्व हों वे भी हों, पर यदि सप्रमाण न हों तो पानी नहीं बनेगा वैसे ही इसमें है। नामस्मरण का अभ्यास प्रतिक्षण एकसमान सतत गंगा के प्रवाह के समान मन, मति, चित्त, प्राण, अहम् और हृदय में चैतन्य रूप न बने तब तक उसके विषय में कुछ भी पूर्ण रूप से उगनेवाला नहीं होता है।

('जीवनप्रेरणा', आवृत्ति २, पृ. १०३-१०४)

मनुष्य में समय समय पर और यदाकदा अलग-अलग प्रकार की मानसिक दशाएँ (moods) आती रहती हैं। इससे कभी हमें न रुचे ऐसी किसी की मानसिक दशा हमारे प्रति हो तो इससे अस्थिर न हों, चिढ़ न जावें और भावना में बहकर उत्तेजित न हों। ऐसे समय में उस 'जीव' के जो उत्तम प्रकार के गुण हैं और उसके जीवन का जो उत्तम पहलू है, उसे याद किया करें अथवा तो पूर्णरूप से नाम-स्मरण में एकदम लग जाना चाहिए। मन को ऐसे किसी उल्टे-सीधे भाव से कुछ भी स्पर्श न होने दें और ऐसी ज्ञानपूर्वक की उस समय जागृति बनाए रखें। **किसी जीव के मन के उल्टे-सीधे भाव का हमारे मन को यदि स्पर्श हो जाय तो वह अस्पृश्यता है।** और उसकी शुद्धि किया करें, यह सही है। आंतरिक शुद्धि हुआ करे या रहा करे उसके लिए यदि साधक सजग न रहा करे तो वह नहीं बन पाएगा। इसलिए उसे हृदय में प्रभु की प्रार्थना करनी चाहिए।

('जीवनप्रवेश', आवृत्ति १, पृ. ४८)

मन के अंदर जागे अच्छे या बुरे की प्रेरणा से ही हम सब काम करते होते हैं। ऐसी स्थिति में हुए कर्म तो द्वन्द्व को ही जन्म देते रहेंगे इसलिए हमें तो मन में श्रीहरि की भक्ति को और उसका प्रेम माधुर्ययुक्त स्मरण केवल इतना ही मात्र प्राणवान ढंग से हुआ करे और ऐसे मन की दशा में जो कुछ भी कर्म मिला करें, ऐसे कर्म द्वन्द्व नहीं उपजा सकते। इससे रागादि मंद होने की संभावना रहती है। **इसलिए हर स्थिति में, सर्वत्र उसके मधुर-मधुर नाम को हृदयस्थ रखा ही करें। हमारे जीवरोग को मिटानेवाला वही सच्चा तावीज है।**

('जीवनपोकार', आवृत्ति १, पृ. ४३-४४)

सांसारिक बातचीत में संसारी की तरह कभी भी हिस्सा न लेना बने, उसकी पूरी तरह सावधानी रखनी है। सामनेवाले जीव की बातों से अलग पड़ना, मानो कि एकदम न हो सके ऐसा हो, सामने का जीव बुजुर्ग हो, वह स्वयं ऐसी बात करता हो, ऐसे समय में क्या करें ऐसा प्रश्न उठेगा सही, और ऐसे प्रसंग संसार में बनते हैं। ऐसे समय में हम यदि जागृत और चैतन्ययुक्त सावधान और संभलकर रह सकें तो बात सुनने पर भी न सुनने का बनें। वह भी इसतरह से कि मन को स्मरणधारणा में डुबो देने का प्रभुकृपा से हो रहा हो और स्वयं उसके साथ की बातों में किसी भी प्रकार की रुचि न ले रहा हो तथा उसमें यहाँ की वहाँ की हामी भी न भरता हो। बुजुर्ग की ऐसी सांसरिक बातों में स्वयं सहानुभूति देता हो वैसा उसे वह लगने नहीं देता। ऐसी बातों को भूलचूक से भी उत्तेजना न दी जाय उसका सौ प्रतिशत ध्यान प्रभुकृपा से रखें। जीव बुजुर्ग भले ही हो, जिसे अपने नित्य के आचरण व्यवहार द्वारा पता लग जाता हो कि अब उसे संसार की ऐसी उल्टी-सीधी बातों में कोई रुचि नहीं है। हमारी इस प्रकार की छाप,

असर, हमारे चलते रहते सतत नामस्मरण के यज्ञ से उन सभी में पैदा करनी है यह जान लें ।

शायद कोई ऐसे बुजुर्ग जीव दो चार ताने मार डालें तो उसे प्रेम-भक्तिपूर्वक सुन लें । संसार की ऐसी बातों में हम यदि रुचि लेना समझपूर्वक छोड़ देंगे और उसका पूरीतरह भरोसा हमारे आगेपीछे के जीवों को यदि हो गया तो कोई भी हमारे सामने ऐसी बातें करने के लिए प्रेरित नहीं होंगे । सभी किसी के मन में ऐसा ही हुआ करेगा, 'जाने दो न उसे ! वह तो अब भक्त हो गयी है !' ऐसा कहकर वे लोग हमारा नाम ही निकाल डालेंगे । संसारव्यवहार में जीवनविकास की भावना की तरह योग्य रूप से संघर्ष करनेवाला और जीनेवाला 'जीव' को संसार मथ तो अवश्य डालें, परन्तु हमें तो उसमें से नवनीत का अनुभव करना है ।

इसलिए सांसारिक बातों के झगड़ों से अलग हो जाने का सही उपाय तो श्रीभगवान का नामस्मरण है । उसे निरन्तर एकसमान बनाए रखें । उसकी असर अपनेआप जिनके ऊपर होनी होगी अवश्य होगी ही । हम कोई थोड़े ही दूसरों के ऊपर प्रभाव डालने के लिए नाम लेते हैं ? जैसे धुनी मनुष्य के साथ कोई झंझट नहीं करता, सब कोई उसे देखकर कहता है, 'जाने दो न भाई ! वह तो धुनी है !' इसी प्रकार हमें नामस्मरण में धुनी हो जाना है, बन जाना है । संसार में जीव भले हमें नगण्य कर दें, पर हमें तो किसी को नगण्य नहीं करना है । हमें तो समय आने पर जिस किसी का काम प्रभुसेवा के भाव से करना है, काम से घिसनेवाले नहीं है । हमें तो सभी को हृदय से बहुत चाहना है, पर वह श्रीभगवान की भावना के स्वरूप में ही ।

हमें घूम फिरकर हर किसी में भाव तो ज्ञानभक्तिपूर्वक ही रखना है। वही हमारा दैवत और जीवन है। इसका नाम ही सच्ची साधना है। ऐसा सतत एकसमान ज्ञानभक्तिपूर्वक के अभ्यास का प्रभाव हम में और बाहर पड़े बिना नहीं रहता है। हमें तो सभी पर ही सद्भाव बनाए रखने से और इसीतरह उसी भाव से दूसरों के साथ आचरण करते रहने से, दूसरे जीवों को हम बेपरवाह नहीं लग सकेगें। हमसे कोई कनिष्ट प्रकार का है ऐसा तो कभी न समझें। जैसे जो कोई हो वह उसके उसके स्थान पर भले ही हो। इसमें हमें क्या ? हमें तो अपने में रमे रहना है। संसार तो मिला है 'जीव' का जीवपना टालने के लिए। जैसे काँटे से काँटा निकल सकता है। जैसे जहर की मात्रा से जहर टल सकता है वैसे ही जीव का संसारीपन जीवनविकास की भावना को संसार में उसकी यथार्थता द्वारा जीने से दूर हो सकता है, यह निश्चित जानें।

हमें जो कुछ भी है 'श्रीहरि के साथ है'। संसार भी उनके साथ है। जिसमें तिसमें उसे ही संग्रहित करना है। जिसमें तिसमें वही सबसे अग्रिम हो। आदि, मध्य और अंत में वही होगा। उसके पीछे दूसरे भले ही अनंत हों उसकी परवाह नहीं।

('जीवनपोकार', आवृत्ति २, पृ. ८४-८५)

हमें तो वर्तमान में जहाँ तहाँ से प्रभु के नामस्मरण द्वारा साधना के भाव को प्रेमभक्तिभाव से मजबूत पकड़ पकड़कर उसके भाव में और उसके भाव से, सकल कर्म करते रहना है और जीव की द्वन्द्वादि प्रवृत्तिओं में घमासान के कारण यहाँ से वहाँ फेंके जाने की क्रिया से बच जाने का ज्ञानभान उसकी कृपा से बनाए रखना है। वर्तमान की कक्षा में इतना हमारे लिए बस है। इसलिए कमर कसकर बस लग जाना है। प्रभुकृपा से कहता हूँ कि बस जागो, जागो और जागो ही।

जागे बिना का कुछ भी करना सब बेकार है। पूरी तरह अंतर से जागने के बाद सोना हो तो सोओ पर पहले तो सभी जागें, इतनी प्रार्थना है।

('जीवनपोकार', आवृत्ति २, पृ. १०१)

■ स्मरण और संसार :

जिस 'जीव' का मन संसार की उपाधिओं से विलग हुआ हो, जीवन का महत्त्व जिसे समझ में आ रहा हो और जिसका मन भगवान के चरणकमल में लगा रहता हो ऐसा जीव होने से भी उस विषय में पूछने जाँचने नहीं रहता है। वह तो उसमें लगा ही रहता है। किन्तु ऐसे जीव सभी नहीं हो सकते। जिसके जीवन का एकमात्र ध्येय जीवन के रहस्यों को सुलझाने, समझने और अनुभव करने का चैतन्य आदर्श धधकती तमन्ना हृदय से हृदय में लगी हुई हो, वैसा जीव तो उस दिशा में ही मुड़नेवाला है। ऐसे 'जीव' को संसार या संसार की प्रवृत्तिओं, उपाधियों, कठिनाइयों, उलझनों, प्रश्नों, अनेक प्रकार की परेशानियाँ आदि जीवन के ध्येय की प्रवृत्ति में प्रवेश करने से नहीं रोक सकतीं। परन्तु वैसा न हुआ हो तब भी जो 'जीव' का मन थोड़ा-थोड़ा भी भगवान के भाव की ओर जा रहा हो, वैसे जीव से वह इच्छा करे तब भी संसार की प्रवृत्तियाँ एकदम छोड़ी नहीं जा सकतीं। इसलिए ऐसे संघर्षशील जीव को तो संसार की प्रवृत्ति करते हुए भी अपने जीवन का समग्र झुकाव चैतन्य के भाव के प्रति ढलता रहे यह देखना उसका एक महत्त्वपूर्ण दायित्व है।

यद्यपि लक्ष्मी उपार्जन की प्रवृत्ति करते-करते उसे अनेक प्रकार के कर्म बंधन होंगे ही। नये कर्मों का उपार्जन ऐसा जीव करते ही रहनेवाला है। अनेक प्रकार के रागमोहादि आवरणों में भी वह जीव सम्मिलित रहनेवाला है ही। वैसे कर्मों का परिणाम भी उसे भोगना ही

पड़ेगा यह बात भी निश्चित है। परन्तु कर्मों के साथ यदि ऐसा जीव भगवान के भाव की ओर अपनी प्रवृत्ति बनाए रखेगा, तो वैसी प्रवृत्ति के संस्कार भी उसमें पड़ते ही रहेंगे और उसका परिणाम भी उसे मिलेगा ही। सभी संपूर्णतः न हो सके, तो भी थोड़ा भी करते रहें, यह 'जीव' के लिए उत्तम बात है। यों करते-करते श्रीभगवान के भाव से संबंधित प्रवृत्ति का वेग (momentum) जैसे जैसे धीरे-धीरे बढ़ता जाएगा और वह वेग जैसे ही अखण्डता की मर्यादा तक पहुँच जाएगा– वैसे ही 'जीव' की अंतर्दृष्टि भी परिवर्तित हुए बिना रह सकेगी ही नहीं। प्रभुकृपा से जो 'जीव' का भगवान के नाम का रटन भले ही आदतानुसार होता जाएगा और ऐसे रटन की अखण्डधारा निरन्तर एकसमान-गंगधारावत् यदि प्रभुकृपा से बन जाएगी तो ऐसी प्रवृत्ति में भी चैतन्य प्रगट हुए बिना नहीं रह सकता। सभी जीव संसार की प्रवृत्ति और ऐसी इतर प्रवृत्तियों को एकदम छोड़ नहीं सकते। वैसा संभव भी नहीं है। वह सब छोड़े बिना भगवान के भाव में प्रवेश न कर सकें ऐसा कुछ भी नहीं है। मानो कि कोई जीव एकदम ऐसी द्वन्द्वादि प्रवृत्ति छोड़ दे तो भी उसका उसके मन में रहे द्वन्द्व और उसकी प्रकृति तथा उसके संस्कार यों ही थोड़े ही जीव से छोड़े जा सकते हैं ? वह तो निरन्तर एकसमान साधना हुए बिना और उसके प्रति एकसमान प्राणवान लक्ष्य बिना वैसा होना कभी संभव भी नहीं। जीव वैसा सब नहीं कर सकता है। इसप्रकार जैसे-जैसे संसार के प्रति मोह, काम, राग, ममता आदि छूटते हुए लगेंगे, त्यों-त्यों भावभक्ति में तल्लीन होते हुए हम अपने को अनुभव कर सकेंगे।

'हँसना और आटा फाँकना' ये दोनों काम एक साथ हो सकें, संभव नहीं लगता; परन्तु यदि बारीकाई से देखें और जाँचें तो लगेगा कि आटा फाँके और हँसे—वह भी खिलखिलाकर—तो आटा उड़

जाएगा तो सही; तब भी मुँह में आटा थूंक के कारण थोड़ा बहुत भी भीगेगा और ऐसा आटा थोड़ा बहुत पेट में जाएगा ही । उसी प्रकार संसार की प्रवृत्ति जो जीव न छोड़ सकता हो, ऐसे 'जीव' का मन थोड़ा भी भगवान के प्रति भाव रखता हो, तो उसके प्रति अधिक सभान रहकर उसे एकसमान अखण्डाकार हो ऐसे करने में यदि वह ध्यान लगाए तो उतने समय तक हुए अच्छे-बुरे सभी कर्मों का परिणाम उसे भुगतना तो पड़ेगा ही ।

पर यदि भगवान के भाव की प्रवृत्ति एकसमान प्राणवान उसमें बन सके, तो फिर पहले पड़ चुके जीवदशायुक्त कर्म संस्कारों का जब उदय होगा, उस समय उस 'जीव' की भूमिका हमारे जैसे 'जीव' के समान द्वन्द्वयुक्त नहीं होगी । इसलिए पुराने हो गये कर्म के परिणाम भुगतने की बेला के जो कर्म होने वाले होंगे ऐसे 'जीव' को रागद्वेषादि द्वन्द्वादिक भूमिका में नहीं ले जा सकेगा यह बात निश्चित है । जिस 'जीव' को श्रीभगवान के भाव की भूमिका निरन्तर अखण्डाकार हो उस अवसर पर उसका मन, चित्त, प्राण, मति और अहम् भी वैसी भावना में रमा करेंगे । जैसे कोई अति कुशल सिद्धहस्त तैराक हो तो वह मानो तैरता ही न हो ऐसे पड़े-पड़े भी तैरा करता है । अरे ! कितने सिद्धहस्त तैराक तो हाथपैर बंधवाकर भी पानी पर तैरा करने के उदाहरण आज भी मौजूद हैं । इसीप्रकार अखण्डाकार वृत्ति हो जाने पर पुराने कर्मों का बंधन ऐसे-ऐसे कर्म उस उस अवसर पर नष्ट होने पर भी—ऐसे 'जीव' को लगनेवाले नहीं हैं । परन्तु यह विषय तो हम सब की दृष्टि मर्यादा के बाहर भले ही हो, परन्तु हमारे सभी के जीव का दृष्टिबिन्दु तो वही है । हमें आज नहीं तो कल वहाँ जाना ही है, यह बात भी निश्चित है । इसलिए जो जीव लक्ष्मी की प्रवृत्ति को छोड़ न सके, इतनी छटपटाहट जहाँ तक 'जीव' में नहीं लगी है, तब तक वैसा जीव

श्रीभगवान के भाव के प्रति जो कुछ और जितनी कुछ प्रवृत्ति कर सकता हो वह ऐसे जीव के लिए श्रेयस्कर है ही।

बालक चलना अभी पूरा सीखा नहीं होता तब तक उस प्रकार के प्रयत्न की दिशा अभी तो मात्र शुरु होने लगे, और वह जब तक खड़ा होना सीखता है, वही मातापिता दो हाथ फैलाकर उसे उँगली देते हैं और कुछ आगे चलाने के लिए ललचाया करते हैं। वैसे ही 'जीव' को श्रीभगवानके भाव की प्रवृत्ति में ललचाने की आवश्यकता रहती ही है। संसार में रहते-रहते और संसार की प्रवृत्ति में व्यस्त रहें और ऐसी स्थिति में नामस्मरण, प्रार्थना, ध्यान आदि साधन करते रहने से धारणानुसार असर तत्काल तो नहीं होती तथा योग्य परिणाम लाया नहीं जा सकता यह हकीकत भी सौ प्रतिशत सत्य है। ऐसा होने पर भी किसी के कहने से संसार या संसार की प्रवृत्ति कोई भी जीव नहीं छोड़ पाएगा, छोड़ भी नहीं पाता। इससे ऐसे 'जीव' को 'मामा न होने से कहते मामा भी क्या खराब ?' इस न्याय से 'जीव' के मन को कभी तो भीगने के संयोग खड़े होते हैं। फिर, जीवन में अच्छे कर्म के भी वैसे और बुरे के भी वैसे ही परिणाम, यह भी निश्चित है। जो जीव तोते की तरह, संकल्प के साथ नाम थोड़ा बहुत लिया करेगा, वैसे 'जीव' का मन सुकोमल होने की संभावना रहती है। उसमें भावना जागनेवाली है। कुछ भी जो न करता हो उसकी अपेक्षा जो जीव कुछ इस ओर करने का संघर्ष रत हो, वह इष्ट है।

('जीवनप्रेरणा', आवृत्ति २, पृ. ११९ से १२३)

जप करते हुए वृत्तियाँ किस कारण साकार होती होंगी ?

जब जप करने लगें और ज्यों अधिक समय तक यह चलता रहे—जप किये जानेवाला शब्द आकाश के साथ संलग्न है, अतएव जब अखण्ड होने लगे तब यह सारी वृत्तियाँ हैं—मन, बुद्धि, चित्त,

प्राण और अहम्—इन सभी में अपना स्वतंत्रक्षेत्र मिलता है। अभी हम जीवदशा में होते हैं तब अलग-अलग अनेक प्रवृत्तिओं में रुके हुए होते हैं। पर यहाँ हम सजग होने से ऐसा होता है। भले ही उसे रोक न सकते हों, पर वह मंद तो पड़ता ही है।

जब शब्द संपूर्ण साकार होता है तब क्या होता है ? मनादि पर उसका नियंत्रण नहीं होता है। जैसा होता है वैसा होने देता है। ऐसी स्थिति हो जाती है, इसलिए ये सारे खुले पशु हो जाते हैं। तब ये सारी वृत्तियाँ खिलने लगती हैं। पर उस समय सतत जप में लीन होने से हमारे में जो साक्षीपन है वह साक्षीपन आने लगता है।

● ● ●

प्रारंभ में कामक्रोधादिक के आक्रमण हुआ करते हैं सही। साधक जानता है कि यों ही यह सब होता है। वह आदेश देकर दबा नहीं देता क्योंकि वह समझता है कि यदि उसे दबा दें, तो दुबारा दुगुने वेग से आनेवाला है। इसलिए धीरे-धीरे उसके पास से काम लें। इसलिए समझपूर्वक उसके पास से काम लेते हैं।

उदाहरण—हमें कामवासना हुई। उस कामवासना को साधना में कैसे मोड़ें ? ऐसा हमें प्रश्न होगा। पर उसमें जो जोश है, vitality है, उसे इसके साथ जोड़ दें ऐसी कला आ जाती है। सामान्य मनुष्य नहीं कर सकता। पर उसमें ऐसी कला आ जाती है। बहुत बार उसने अभ्यास किया था। ऐसे प्रयोग किये होते हैं। इसलिए ऐसी कला उसमें आ जाती है। इसलिए उसे कोई भी काम, क्रोध, लोभ, मोह—यह कुछ भी हुआ तो उसकी vitality स्वयं अपनी साधना में उपयोग कर लेता है। प्रारंभ में वह पाँच, दस, पन्द्रह बार उपयोग करता है। वह सफल नहीं हो पाता। तब भी वह छोड़ नहीं देता। वह अपने काम में, उपयोग करने की कला में तत्पर रहता है। प्रयत्न करने पर वह अंत में

सफल होता है। इसीतरह काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, अहम् आदि बल भी जीवन में ऊर्ध्वगामी भी हो सकते हैं।

यह कला तो मुझे सद्गुरु ने सिखायी थी। वे कुछ भी कर सकते हैं। अमुक ही कर सकते हैं ऐसा है नहीं। मात्र उसका सिद्धान्त समझ लेना चाहिए। फिर उसका उपयोग कर सकते हैं और उसमें उपयोग करने के बाद ऐसी एक प्रकार की अटूट मस्ती आ जाती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर सारे सशक्त बल हैं। ये हमारे शरीर में फोगट में नहीं रहते। हमारी साधना में आते हैं, तब हमें अधिक बल मिलता है। सचमुच के मर्द बन जाते हैं। कैसी भी अड़चने आएँ, हमें नचाएँ तब भी हम झुकते नहीं है। *('तद्रूप-सर्वरूप', पृ. २८-२९)*

एक अज्ञानी मनुष्य स्वयं के कर्मजाल में फँसता जाएगा और उसमें उलझता रहेगा तथा उसे उसकी समझ या ध्यान भी नहीं रहेता। परन्तु इसप्रकार का दूसरा अज्ञानी मनुष्य भगवान का स्मरण सतत सदा रखने के लिए आतुर रहता होगा और जिससे वैसा उसका अभ्यास होता जाता होगा। तो उसके अज्ञानांधकार से या संस्कारवशात् या अपनी बहिर्गामी आदतों से या मन में बलवान भावों को रोक सकने की उसकी अशक्ति के कारण अथवा तो इन्द्रियों की नदी की बाढ़ जैसे वेग के कारण या दूसरे कारण या संजोगों के कारण अपने अन्यथाभावी कर्म में रुचि लिया करता होगा, तो भी उसके प्रभुस्मरण के प्रभाव से वह पहले प्रकार के अज्ञानी मनुष्य की तुलना में दूसरे प्रकार के अज्ञानी मनुष्य की तुलना में दूसरे प्रकार के अज्ञानी मनुष्य की भ्रमणा जल्दी छूट जाने की पूरी संभावना है। नामस्मरण के हृदयपूर्वक के सेवन से ऐसा का हृदय कोमल बनता है। ऐसों की भ्रमणा टूटेगी तब उसके अभी तक के अभ्यास के कारण जो पश्चात्ताप की अग्नि भभक उठेगी, वह पश्चात्ताप की अग्नि में उसका जीवपना

होम किये जाने पर जलकर खाक हो जाएगा। उसकी जीवनसाधना का वेग तब अत्यन्त बढ़ गया होगा। नामस्मरण की भावना आ जाने पर सब कुछ भूल जाते हैं।

साधारण विषय की धुन के आवेग और आवेश के कारण भी मनुष्य दूसरा सब भूल जाता है। यह अनुभव की सच्चाई है। यदि भगवान के नामस्मरण की धुन लग जाय तो उसकी सच में बोलबाला है। इसलिए उसका नाम जितना लिया जाय उतना लो। खूब भाव से लो। हृदय की चेतना से लो। समग्र आधार से लो। 'उसे' दिल से भजते रहें। 'उसकी' निरन्तर भावमाला सर्जित कर उस माला को 'उस' के चरणकमल में समर्पित कर दें, ऐसी चैतन्यमय परम्परा में ही, बस आनंद में ही मस्त रहा करें, तो ज्ञान का अनुभव तो प्रत्यक्ष ही है। *('जीवनसंशोधन', आवृत्ति १, पृ. ३२९)*

■ नामस्मरण का प्रताप :

भगवान को हम वास्तविक रूप में देखना चाहते हैं सही और यह सब कैसे संभव होगा, ऐसा भी लगता है। फिर यदि भगवान है तो संसार में ये सभी दुःख, अराजकता, त्रास, अन्याय आदि क्यों हैं ? ऐसा कितने ही लोग पूछते हैं। वह है कि नहीं यह भी एक बड़ा प्रश्न है ऐसा भी बहुत लोग मानते हैं। बहुतों के हृदय में ऐसा प्रश्न उठता है। जो जड़ हैं, उनसे तो ये लोग अच्छे हैं, क्योंकि इतनी सारी उलझने उन्हें होती हैं। परन्तु यह उलझन कितनी ही बार ऊपरी तौर पर होती है। ऐसा बाह्य ऊपरी स्तर वाले या society talk जैसी बात—सभ्य गिने जाते लोगों की मान्यता या बातचीत—जो लोग कहते हैं ऐसे लोग तो जड़ से भी तुच्छ है। परन्तु जिसे सच्चे दिल से इस विषय में मथने की लगनी लगी है, ऐसे लोगों को जरूर एक दिन समझ

आनेवाली है। जगत पर के अधिकतर लोगों के हृदय में—फिर भले ही उनमें बहुत से जंगली हों–किसी न किसी प्रकार के भगवान या देव विषयक भावना होती ही है। इसलिए ऐसा कह सकते हैं कि यह भावना सुषुप्त रूप में सारे संसार में व्याप्त है। यह तथ्य यदि हमारी समझ में पूर्ण रूप से आ गया हो तो अपने जीवन के ध्येय को सतत अधिक से अधिक तमन्नावाला बनाएँ और उसे बार बार लक्ष्य में रखें। इसके लिए नामस्मरण बड़े से बड़ा साधन है। नामस्मरण का प्रताप अनेकविध हैं। *('जीवनपगथी', आवृत्ति १, पृ. ९१-९२)*

■ विस्मरण के सामने सावधान :

भगवान को न भूलने का सतत अभ्यास करने चाहिए। भगवान को भुला दें ऐसे प्रसंग अब अनेक आएँगे क्योंकि आज (१९४२) प्रलय चल रहा है। इस प्रलय के पीछे की दुनिया कैसी होनेवाली है, इसकी हमें कुछ भी कल्पना नहीं है। सभी लोग कहते हैं कि New Order नया युग आनेवाला है। पर लड़ाई के दौरान और लड़ाई के पश्चात् एक दूसरे के प्रति प्रजाओं के मानस के अंदर इतने सारे जहर फैल रहे हैं कि उसका परिणाम आए बिना रहनेवाला नहीं है। लड़ाई के बाद अधिक वर्णसंकरता आनेवाली है, यानी कि दिल की उदारता में अधिक संकुचितता आनेवाली है और लोगों में जो उदात्त भावना है वह उदात्त भावना कहीं खो जानेवाली है। ऐसे समय में भी जो अपने ध्येय को चुस्ती के साथ श्रद्धा और विश्वास बनाए रहेंगे तथा कुछ भी हो जाने पर भी और जीवन की कठिन कसौटी में भी यही सत्य तत्त्व है ऐसा समझकर जो आचरण करेंगे, उन्हें काफी लाभ होनेवाला है। भगवान का अवतार ऐसे लोगों को तारने के लिए ही होता है। दुनिया में घुटन का समय पास आता जा रहा है। बड़े बड़े संतपुरुष भी क्या करें और क्या होगा, विचार नहीं कर पाएँगें ऐसी स्थिति का निर्माण होनेवाला है।

ऐसे जीवन–अंधकार के समय में हमारे लिए, डूबते का सहारा मात्र भगवान का नाम ही है। कितने लोग ऐसा कहते हैं कि कर्म का भोग तो भोगे बिना छुटकारा नहीं है तो फिर नाम लें या न लें सब समान ही है न ? मेरे हिसाब से तो समान नहीं है। कर्म का भोग अवश्य भुगतना पड़ेगा। परन्तु 'शूली का विघ्न काँटे से गया' उसके जैसा होगा। कर्म के परिणाम की intensity तीव्रता प्रभाव की मात्रा घटकर बहुत ही कम—बिलकुल सूक्ष्म स्वरूप में—नामस्मरण द्वारा हो जाएगी। इस तथ्य का अनुभव अनेक संत भक्तों ने किया है। उस अनुभव के आधार पर मुझे भगवान के नामस्मरण में विश्वास और श्रद्धा समय समय पर दृढ़ होते गये है। इसलिए कर्म ही सर्वोपरि है ऐसा कुछ नहीं है। *('जीवनपगरण', आवृत्ति १, पृ. १०-११)*

■ स्मरण के साथ-साथ :

हम उन्हें याद किए बिना यदि एक पल भी बिताते हैं, वह हमें बहुत बहुत डंखना और सालना चाहिए। ऐसा अनुभव होता हो, तो निश्चित ही किसी दिन अवश्य उसे पा सकेंगे। हमें आशा रखनी चाहिए ऊँचे से ऊँची और ऐसे प्रकार का आचरण करने का लेश मात्र यदि दिल न होता हो, तो जानें और मानें कि हम अभी Fool's paradise में (कपोल-कल्पित स्वर्ग में) रह रहे हैं। हम आदर्श रखें, उस आदर्श और उसकी भावना नित्य के व्यवहार एवं आचरण में यदि न जागें तो निश्चित जानें कि अभी हमें जीवन के आदर्शों की परवाह नहीं है। आदर्श को अनुभव करने का सही स्वरूप अभी जीवन में नहीं आया है। जिस 'जीव' को अपने जीवन का आदर्श सिद्ध करना है, उसे अपने आपको स्पष्ट रूप से निश्चयात्मक रूप से समझ लेने की अति आवश्यकता है। अपनी प्रकृति की दिशा चाहे किसी भी कक्षा की हो उसमें आपत्ति नहीं है, पर वैसी दशा में पड़े रहकर भी हम

भगवान को भजने की बात करें, यह तो अपने आपको ऊल्लू बनाने का कटु सत्य है। इसलिए नम्रभाव से, प्रार्थनाभाव से सभी स्वजनों के अंतर में उनके भाव को चेतनवन्त करने हेतु स्पष्ट बता देना चाहिए। यदि उठना है तो उसी प्रकार के व्यवहार एवं आचरण करें। विरुद्ध प्रकार के रुखों जीवन में प्रकट हों ऐसे अवसरों पर जागृतिपूर्वक का जबरदस्त सामना किया करें। उस समय हृदय से उसे प्रार्थना करते हुए पुकारा करें, उनके चरणकमलों में हृदय की पुकार करें। किसी भी तरह से संसार आदि के क्षेत्र के रुखों के दलदल में न डूब जाँय। ऐसे दलदल में हम सभी फँस जाते हैं, उसका प्रत्यक्ष ज्ञान-भान तो प्रभु यदाकदा हमें उनकी कृपा से करवाते रहे हैं। जीवन में ऐसा प्रत्यक्ष घटित होने का हमें अनुभव करवाता है, परन्तु ऐसे अनुभव को उस तरह और उसके हेत्वर्थ और भाव को हम स्वीकार नहीं कर पाते। स्वीकार न कर सकें उसमें भी आपत्ति नहीं, परन्तु उल्टे उस अवसर पर हम उस पर क्रोधकर उसे नकारते हैं, ऐसे 'जीव' का तो क्या होगा ? ऐसा होने पर हक्का-बक्का जागने का भी यदि बन सके और थोड़ा बहुत हिलने-डुलने लग जाँय तथा उसीके अनुसार सजग होकर आचरण करने लग जाँय तो उत्तम, पर फिर ऐसे हिलने-डुलने से हम थे वैसे जहाँ के तहाँ रहें तो वैसे हिलने-डुलने का भी कोई अर्थ नहीं। *('जीवनपोकार', आवृत्ति १, पृ. ४२८-२९)*

॥ हरिःॐ ॥

साधना-मर्म

(१) मुख से या मन में जागृत रूप से जप : साथ ही हृदयप्रदेश पर ध्यान तथा चेतन के चिंतन साथ भावात्मक भाव का रटन।

(२) प्रत्येक क्षण में सतत समर्पण : अच्छे तथा बुरे दोनों का।

(३) साक्षीभाव, जागृति ; विचारों की शृंखला न जोड़ें।

(४) हो सके उतना अधिक वाचिक और मानसिक मौन रखें। अभ्यस्त हो और अत्यधिक शरणभाव जीवन में चेतनापूर्वक की जागृति से विकसित करें।

(५) आग्रह — प्रभु चिंतन के अलावा सभी आग्रहों को छोड़ें; नम्रता रखें, शून्य होने का ध्येय रखें।

(६) बहुत भावपूर्ण हृदयस्थ होकर आर्द्र और आर्तभाव से प्रार्थना करें। भगवान को सभी सुख-दुःख बतलाते रहें; उनके साथ आत्मनिवेदन द्वारा बहुत गहरा व्यक्तिगत संबंध स्थापित करें; मन में कुछ भी विचार न आने दें। रिक्त रहें।

(७) जो भी कार्य करें, प्रभु का है समझकर करें; जरा भी अनबन किये बिना उसे बहुत प्रेमपूर्वक करें, प्रत्येक प्रसंग-घटना हमारे कल्याण के लिए ही है और प्रत्येक प्रवृत्ति हमारे अपने ही विकास के लिए होनी चाहिए, प्रत्येक प्रसंग के पीछे प्रभु का गूढ़, शुभ संकेत छिपा है।

(८) आत्मलक्षी—अंतर्मुखी बनें, मात्र अपनी दुनिया में रहें। जान बूझकर अपने आपको न घसीटने दें।

(९) अन्य (दूसरों) की सेवा प्रभुसेवा समझें; सेवा लेनेवाले सेवा देनेवाले पर सेवा का अवसर देकर उपकार करते हैं। राम ने दिया है और राम को दे रहे हैं, वहाँ 'मेरा मेरा' कहाँ रहा ? तुम्हारा इस जगत में है क्या ?

(१०) प्रत्येक कर्म, प्रत्येक बातचीत, व्यवहार हमारे ध्येय को गति दे ऐसे उद्देश्य को लक्ष्य में रख कर करें। पढ़ते-लिखते समय और प्रत्येक कर्म करते समय भाव की स्मरणधारणाओं का अभ्यास करते रहें।

(११) वृत्ति का मूल खोजें, उसका पृथक्करण करें। उसमें खोये बिना, उसका तटस्थतापूर्वक और स्वस्थतापूर्वक निरीक्षण करें।

(१२) प्रभु की प्रत्येक कला, सौन्दर्य, रमणीयता, विशुद्धता आदि प्रभु के वरदानों में रहे भाव का, उसके उसके अनुरूप भाव, तब हम में प्रगट हो, ऐसी प्रार्थना करें।

(१३) भावप्रवणता, आवेश और मनोभाव को ऐसे ही न जाने दें; साथ ही उसमें डूब भी न जाएँ। उसका साधना में उपयोग करें; तटस्थता बनाए रखें।

(१४) खाते और पानी पीते हुए जीवन में चेतनशक्ति के अवतरण-भावकी प्रार्थना करें; शौच, पेशाब आदि क्रियाओं के समय विकारों, कमजोरियों आदि का विसर्जन भाव की प्रार्थना करें।

(१५) स्थूलता को त्यागकर, सूक्ष्म तत्त्व को ध्यान में रखें। वृत्ति की शुद्धि करें, भाव की वृद्धि करें।

(१६) प्रभु सचराचर हैं। '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**' की भावना रखें।

(१७) प्रत्येक व्यक्ति और वस्तु के उज्ज्वल पक्ष को ही देखें। किसी के भी काजी न बनें; किसी भी विषय में जल्दी से अभिप्राय

न दें; वाद–विवाद न करें; अपना आग्रह न रखें; दूसरों में शुभ हेतुओं का आरोपण करें; मानसिक और सार्वत्रिक उदारता जीवन में प्रगट करें; अत्यधिक प्रेमभाव बनाए रखें; प्रकृति का रूपान्तर करना है, उसे लक्ष में रखकर प्रकृतिवश होनेवाले कर्मों को वश न हो कर आगे बढ़ें; फल की आसक्ति त्यागें; स्वयं पर होते अन्यायों—आ पड़ते दुःखों—आदि का मूल हम में ही है, इसे दृढ़तापूर्वक मानें। गुरु में प्रेमभक्तिभाव दृढ़ बनाये रखें; अभीप्सा, इन्कार और समर्पण के त्रिवेणी संगम को नित्य बनाए रखें। सदा प्रसन्नता बनाए रखें; कृपा और पुरुषार्थ के युगल को जीवन में उतारें; प्रत्येक कर्म के आदि, मध्य और अंत में प्रभु की स्मृति बनाए रखें; मन को निःस्पंद करें; राग–द्वेष निर्मूल करने की जागृति सतत रखें; आध्यात्मिक अनुभवों को नित्य के व्यावहारिक जीवन में आचरण में लायें; कहीं भी किसी भी दायित्व से भागें नहीं; जो भी प्रभुइच्छा से प्राप्त हो, उसे प्रभुप्रसाद समझ प्रसन्नता से ग्रहण करें। कहीं भी किसी से तुलना न करें; अनुकूल–प्रतिकूल परिस्थिति, यह मन का भ्रम है; जीवनसाधना के लिए सब कुछ सानुकूल ही होता है; प्रभुमय–उनके मूक यंत्र–होने की ही एक तमन्ना जीवन में बनाए रखें।

(१८) कर्म में, कर्म का महत्त्व नहीं है, किन्तु जीवन के भाव का सतत एकसमान सजग चिंतन रहा करे, यह विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। ऐसा सजग अध्ययन कर्म करते हुए क्षणों में बनाए रखें।

— मोटा

पूज्य श्रीमोटा के जीवन का परिचय

जन्म	: ता. ४-९-१८९८ भाद्रपद कृष्ण चतुर्थी, संवत १९५४
स्थान	: सावली, जिल्ला वडोदरा (गुजरात)
नाम	: श्री चूनीलाल
माता	: श्रीमती सूरजबा
पिता	: श्री आशाराम
जाति	: भावसार
१९१६	: पिता की मृत्यु ।
१९०५ से १९१८	: टुकड़ों में पढ़ाई के साथ कठिन मजदूरी ।
१९१९	: मैट्रिक उत्तीर्ण ।
१९१९-२०	: वडोदरा कॉलेज में ।
दि. ६-४-१९२१	: कॉलेज का त्याग ।
१९२१	: गुजरात विद्यापीठ
१९२१	: विद्यापीठ का त्याग । हरिजन सेवा का आरंभ ।
१९२२	: मिरगी की बीमारी से तंग आकर गरुड़ेश्वर की चट्टान से आत्महत्या का प्रयास, दैवी रक्षा; 'हरिःॐ' जप से रोग मिटाने का सफल प्रयोग ।
१९२३	: 'तुज चरणे' तथा 'मनने' की रचना ।
१९२३	: वसंतपंचमी को पूज्य श्रीबालयोगीजी द्वारा दीक्षा ।

	श्रीसद्गुरु केशवानंद धूणीवाले दादा के दर्शन के लिए सांईखेड़ा गए । रात्रि को स्मशान में साधना और दिनभर प्रभुप्रीत्यर्थ हरिजन सेवा ।
१९२६	: विवाह – हस्तमिलाप के अवसर पर समाधि का अनुभव ।
१९२७	: हरिजन आश्रम, बोदाल में सर्पदंश –परिणाम स्वरूप 'हरि:ॐ' जप अखंड हुआ।
१९२८	: 'तुज चरणे' के प्रथम संस्करण का प्रकाशन।
१९२८	: प्रथम हिमालय-यात्रा ।
१९२८	: साकोरी के पूज्य श्रीउपासनीबाबा का नडियाद में आगमन, उनके आदेश पर साकोरी गये, वहाँ मलमूत्र के बिस्तर में सात दिन ।
१९३०	: मन की नीरवता का साक्षात्कार ।
१९३० से ३२	: इस दौरान साबरमती, विसापुर, नासिक और यरवडा जेल में । उद्देश्य देशसेवा का नहीं, साधना का। कठोर परिश्रम और लाठी चार्ज के दौरान प्रभुस्मरण-मौन । विद्यार्थियों को समझाने के लिए विसापुर जेल में सरल गुजराती भाषा में श्रीमद् भागवद्गीता को लिखा– 'जीवनगीता' ।
१९३४	: सगुण ब्रह्म का साक्षात्कार ।
१९३४ से १९३९	: इस दौरान हिमालय में अघोरीबाबा के पास जाना हुआ। बाद में नर्मदा धुंवाधार के झरने के पीछे की गुफा में साधना। चैत्र मास में २१ उपलों

की ६३ धुनियाँ प्रज्वलित की, नर्मदा किनारे खुले में शिला पर नग्न बैठकर साधना; शीरडी के सांईबाबा के प्रत्यक्ष दर्शन—आदेश—साधना के अंतिम चरण का मार्गदर्शन।

१९३९ : दि. २९-३-३९ : रामनवमी संवत १९९५ काशी में निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार। हरिजन सेवक संघ से त्यागपत्र। 'मनने' के प्रथम संस्करण का प्रकाशन।

१९४० : दि. ९-९-४० : हवाई मार्ग से अहमदाबाद से कराँची जाने का गूढ़ आदेश।

१९४१ : माता का अवसान।

१९४२ : हरिजन सेवक संघ से अलग होने पर भी हरिजन कन्या छात्रालय के लिए मुंबई में चन्दा इकट्ठा किया। दो बार सख्त पुलिसमार—देहातीत अवस्था के प्रमाण।

१९४३ : २४, फरवरी में गाँधीजी के पेशाब के जहरीले जन्तुओं का अपने पेशाब में दर्शन। नैमित्तिक तादात्म्य का अनुभव।

१९४५ : हिमालय की यात्रा - अद्‌भुत घटनाएँ।

१९४६ : हरिजन आश्रम, अहमदाबाद मीरां कुटीर में मौन एकांत का आरंभ।

१९५० : दक्षिण भारत के कुंभकोणम् में कावेरी नदी के किनारे हरि:ॐ आश्रम की स्थापना। (१९७६ में देहत्याग के बाद आश्रम बंद कर दिया गया।)

१९५४ : सूरत के कुरुक्षेत्र जहाँगीरपुरा के स्मशान में एक कमरे में मौन एकांत का आरंभ ।

१९५५ : दि. २८-५-५५ : नडियाद, शेढी नदी के किनारे हरि:ॐ आश्रम की स्थापना ।

१९५६ : दि. २३-४-५६ सूरत जहाँगीरपुरा कुरुक्षेत्र में हरि:ॐ आश्रम की स्थापना ।

१९६२ से १९७५ : शरीर के अनेक रोग-लगातार प्रवास के साथ ३६ आध्यात्मिक अनुभव ग्रन्थों का लेखन-प्रकाशन ।

१९७६ : फाजलपुर, मही नदी के किनारे श्री रमणभाई अमीन के फार्म हाउस में दि. २३-७-७६ को मात्र छः व्यक्तियों की उपस्थिति में आनंदपूर्वक देहत्याग । स्वयं के लिए 'इँट चूने का स्मारक न बनाने का आदेश' और इस निमित्त प्राप्त राशि का उपयोग गुजरात के दूरदराज पिछड़े गाँवों में प्राथमिक पाठशाला के कमरे बनवाने में उपयोग करने की सूचना ।

॥ हरि:ॐ ॥

आरती

ॐ शरणचरण लीजिए, प्रभु शरणचरण लीजिए
पतित को उबार लीजिए (२) कर पकड़ हृदय लगा लीजिए...
ॐ शरणचरण.

मन–वाणी के भाव आचरण में उतरें प्रभु (२)
मन, वाणी और दिल को (२) कृपा कर एक करें...ॐ शरणचरण.

सभी स्वजनों के साथ, दिल में सद्भाव जगें, प्रभु (२)
भले अपमान हुए हो (२) तब भी भाव बढ़े...ॐ शरणचरण.

हीन प्रकार की वृत्ति; ऊर्ध्वगमन करें, प्रभु (२)
प्रभुकृपा से मथन करावें (२) चरणशरण पाने...ॐ शरणचरण.

मन के सकल विकार, प्राणयुक्त वृत्ति, प्रभु (२)
बुद्धि की सभी शंकाएँ (२) चरणकमल में द्रवित हो...ॐ शरणचरण.

जैसे भी हो प्रभु, वैसे ही दीखें, प्रभु (२)
मति मेरी खुली रहे (२) स्पष्ट ही परखें...ॐ शरणचरण.

दिल में कुछ भरा हो, उससे सब उल्टा, प्रभु (२)
मुझसे कभी न हो (२) ऐसी मति दें...ॐ शरणचरण.

जहाँ जहाँ गुण और भाव, वहीं दिल मेरा टिके, प्रभु (२)
गुण और भाव की भक्ति (२) मेरे दिल में संचरित करें...ॐ शरणचरण.

मन, मति, प्राण प्रभु । तुम्हारे भाव में तल्लीन रहे, प्रभु (२)
दिल में तुम्हारी भक्ति में (२) उमंगें–तरंगें तरंगित करें...ॐ शरणचरण.

– मोटा

हरि:ॐ आश्रम में उपलब्ध हिंदी पुस्तकों का लिस्ट

क्रम	पुस्तक	प्र.आ.
१.	पूज्य श्रीमोटा एक संत	१९९७
२.	कैंसर का प्रतिकार	२००८
३.	सुख का मार्ग	२००८
४.	दुर्लभ मानवदेह	२००९
५.	प्रसादी	२००९
६.	नामस्मरण	२०१०
७.	हरि:ॐ आश्रम (श्रीभगवान के अनुभव का स्थान)	२०१०
८.	श्रीमोटा के साथ वार्तालाप	२०१२
९.	विवाह हो मंगलम्	२०१२
१०.	बालकों के **मोटा**	२०१२
११.	विद्यार्थी **मोटा** का पुरुषार्थ	२०१२
१२.	मौनमंदिर का मर्म	२०१३
१३.	मौनमंदिर का हरिद्वार	२०१३
१४.	मौनएकांत की पगडंडी पर	२०१३
१५.	मौनमंदिर में प्रभु	२०१४

●

English books available at Hariom Ashram Surat.
January - 2020

No.	Book	F. E.
1.	At Thy Lotus Feet	1948
2.	To The Mind	1950
3.	Life's Struggle	1955
4.	The Fragrance Of A Saint	1982
5.	Vision Of Life - Eternal	1990
6.	Bhava	1991
7.	Nimitta	2005
8.	Self-Interest	2005
9.	Inquisitiveness	2006
10.	Shri Mota	2007
11.	Rites and Rituals	2007
12.	Naamsmaran	2008
13.	Mota for Children	2008
14.	Against Cancer	2008
15.	Faith	2010
16.	Shri Sadguru	2010
17.	Human To Divine	2010
18.	Prasadi	2011
19.	Grace	2012
20.	I Bow At Thy Feet	2013
21.	Attachment And Aversion	2015
22.	The Undending Odyssey (My Experience Of Sadguru Sri Mota's Grace)	2019
23.	Pujya Shri Mota Glimpses of a divine life (Picture Book)	2020
24.	Genuine Happiness	2021

●

॥ હરિ:ૐ ॥

नामस्मरण की महिमा संसार में अनेकबार सिद्ध हो चुकी है। यह कोई कपोल कल्पित नहीं है, पर प्रसिद्ध बात है। अनेक संत भक्तों ने उस पर जीवन न्योछावर किये हैं। वर्तमान में भी ऐसे हैं कि जिनका जीवन नामस्मरण से धन्य हुआ है। महात्मा गाँधीजी ने स्वयं प्राहृश्वत शक्ति का आधार नामस्मरण है, अनेक बार घोषित किया है। वे तो शरीर के सुख के लिए भी नामस्मरण का उपचार बतलाते थे, यह प्रसिद्ध बात है। इस प्रकार नामस्मरण एक रामबाण इलाज के रुप में सिद्ध साधन है। वह प्रारंभ में दिल को प्रोत्साहन देता है। किन्तु बाद में पूरे आधार का दिव्य रुपांतर –परिवर्तन करा देता है। उतनी अवस्था में पहुँचने से पहले भी वह दुःखी दिल को आराम देता है, उसकी तहृश्वत भावना को शान्त करता है, उसका प्रेम विकसित करता है तथा गहराई देते हुए प्रेमी में परिवर्तन लाता है। यह सब कुछ है।

– **श्रीमोटा**

'नामस्मरण', प्र. आ., पृ. २१

किंमत : रु. १५/–